भूमिका

इस पुस्तक में संगृहीत आदर्श-निबन्ध उन बालकों के लिये उपयोगी हैं जो हिन्दी भाषा में निबन्ध लिखने की शक्ति सम्पादन करने की कामना रखते हैं। इस पुस्तक में निबन्ध लिखने की शैली के नियम बतलाये गये हैं, साथ ही हिन्दी के कतिपय प्रसिद्ध मासिक पत्रों से आदर्श निबन्ध चुन कर इस पुस्तक में पथ-प्रदर्शक स्वरूप संग्रह कर दिये गये हैं। अन्त में अभ्यास के लिये उपयोगी विषयों की नामावली भी दे दी गयी है।

जो बालक इस पुस्तक को व्यवहार में लावें, उन्हें चाहिये कि, वे पहिले निबन्ध-सूची में से किसी एक ऐसे विषय को चुनें, जिस पर वे कुछ लिख सकते हों। यदि वे उस विषय की जानकारी रखने के कारण कुछ कुछ लिख सकते हैं, तो उनको चाहिये कि, निबन्ध लिखने के पूर्व विचार-पद्धति-नियमों की भूमिका में से किसी एक विषय का क्रम समझ कर निबन्ध लिखना आरम्भ करें। जिन बालकों को किसी विषय पर अपने विचारों को लिपिबद्ध करने का अभ्यास न हो, वे विषय सूची में से किसी एक विषय को चुन कर, विषय-सूची से निबन्ध लिखने का अभ्यास करें। जब तक निबन्ध लिखने का अभ्यास न हो जाय तब तक आदर्श निबन्धों को न छोड़ना चाहिये।

इसमें आदर्श-निबन्ध "हितकारिणी" "[illegible]" "[illegible]" और "[illegible]" से संग्रह किये हैं। अतः हम [illegible] का हृदय से [illegible] किये बिना नहीं रह सकते।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—आवश्यक नियम	१
२—विचारबद्ध निबन्ध	५
१—परिश्रम	५
२—आरोग्यता	५
३—हिंसा	६
४—पक्षी विशेष	६
५—पशु विशेष	६
६—वृक्ष विशेष	७
७—मनुष्य विशेष	७
८—राजा	८
९—जीवनचरित्र	९
१०—नगर	९
११—रेल	१०
१२—पुस्तकालय	११
१३—स्त्री-शिक्षा	११
१४—मन और शरीर	११
१५—दिवाली	१२
१६—नाटक	१२
१७—समाचारपत्र	१३
१८—डायरी या रोज़नामचा	१३
१९—मित्रता	१३
२०—वसन्त	१४

विषय	पृष्ठ
२६—सन्तान	९५
२७—चाह	९९
२८—श्राद्ध का दिन	१०२
२९—मातृ-भूमि	१०४
३०—जीवन का लक्ष्य	१०८
३१—आशा (२)	११२
३२—सदाचार	११८
३३—ईख की खेती का व्यापार	१२८
३४—वीर बालक अभिमन्यु	१३२
३५—हमारा मुख्य कर्त्तव्य	१४५
३६—व्यापार	१४७
३७—प्रेम	१५१
३८—हम दीर्घजीवी कैसे हो सकते हैं ?	१५४
३९—विचारों को सुधारो	१६०
४०—पवित्र-जीवन	१६३
४१—वक्तृता और वक्ता	१६७
४२—महाभारत से शिक्षा	१७१
४३—आत्म-सम्मान	१८०
४४—क्रोध	१८४
४५—हमारा घर	१८७
४६—महानुभावता और सभ्यता	१९१
४७—अभ्यास के लिये निबन्धों की सूची	१९५

हिन्दी निबन्ध-शिक्षा

आवश्यक-नियम

प्यारे बालको ! निबन्ध लिखने की सब से सरल रीति यह है कि जिस विषय पर तुमको निबन्ध लिखना हो, उस पर पहले तुम भली भाँति विचार कर और अपने विचारों को एकत्र कर, किसी एक कागज़ पर टाँप लो। फिर उनको श्रेणीबद्ध करके निबन्ध लिखना आरम्भ करो।

जब निबन्ध लिख कर, तैयार कर लो, तब उसे कम से कम तीन बार आदि से अन्त तक पढ़ो और देखो उसमें कोई बात छूट तो नहीं गयी। यदि कोई बात लिखते समय रह गयी हो, तो उसे आलस्य में पड़ छोड़ो मत। उसे भी यथास्थान अपने निबन्ध में सन्निवेशित कर दो।

जब तुम कपड़े पहिनने लगते हो, तब टोपी की जगह टोपी कोट की जगह कोट और पायजामा की जगह पायजामा पहिनते हो। यदि ऐसा न करो और पायजामा की जगह कोट और कोट की जगह पायजामा पहिन लो, तो तुम्हें देख, लोग हँसें और तुम्हारी नासमझी पर पश्चात्ताप करें।

निबन्ध लिखने के पूर्व तुम अपने किसी विषय सम्बन्धी विचारों को केवल श्रेणीबद्ध ही नहीं करते, किन्तु अपने ज्ञानरूपी

सखा को पोशाक पहिनाते हो। यदि तुम्हारे विचार भली भाँति श्रेणीबद्ध न हुए और तुमने कोट की जगह पायजामा और पायजामे की जगह कोट पहिना दिया, तो तुम्हारे निबन्ध के पढ़ने वाले तुम्हारी नासमझी पर हँसे बिना न रहेंगे और तुम्हारा सारा परिश्रम मिट्टी में मिल जायगा।

उदाहरण के लिये कोई एक विषय ले लो। मान लो तुमसे कोई कहे कि "सत्य" पर एक निबन्ध लिखो। पूर्व इसके कि, तुम कलम कागज़ लेकर झट लिखना आरम्भ कर दो, तुम्हें चाहिये कि, पहले यह विचारो कि "सत्य" के विषय में तुम क्या लिखना चाहते हो। जो लिखना हो, उसे स्मरण के लिये एक कागज़ के टुकड़े पर टीप लो। मान लो, तुम अपने निबन्ध में लिखना चाहते हो—

१—सत्य का प्रभाव।

२—सत्य न बोलने से हानि।

३—सत्य किसे कहते हैं ?

४—सत्य बोलने की आवश्यकता क्या है ?

५—सत्य की प्रशंसा या सत्य बोलने से जो लाभ होता है, उसके प्रमाण में कोई छोटी सी कथा या कहानी।

"सत्य" पर निबन्ध लिखने के लिये ऊपर लिखे विचार बहुत ठीक हैं, पर श्रेणीबद्ध नहीं हैं। यदि उपर्युक्त विचार नीचे लिखे क्रम से श्रेणीबद्ध किये जायँ तो तुम्हारा निबन्ध निर्दोष होगा—

१—सत्य किसे कहते हैं ?

२—सत्य बोलने की आवश्यकता।

३—सत्य बोलने का प्रभाव।

४—सत्य न बोलने से हानि।

५—सत्य की प्रशंसा और उसके बोलने से जो लाभ होते हैं उनको प्रमाणित करने के लिये कोई छोटी सी कथा।

निबन्ध के अन्तर्गत यदि किसी की कही हुई कोई बात या श्लोक उद्धृत करना हो, तो उसे ऐसे स्थान पर उद्धृत करो, जहाँ उसकी आवश्यकता है। केवल यह दिखलाने के लिये कि तुम श्लोक जानते हो अपने निबन्ध में श्लोक या अन्य किसी पद्य का ठूँस देना अच्छा नहीं।

निबन्ध रचना करते समय शब्द एवं पद योजना पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। जिस शब्द के अर्थ में तुमको सन्देह हो या तुम उसका ठीक ठीक प्रयोग न जानते हो, उस शब्द को कभी मत लिखो। जहाँ तक हो सके अन्य भाषाओं के शब्दों का निबन्ध रचना में स्थान न दो। परन्तु अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को देश-निकाला देने के लिये क्लिष्ट शब्दों की कल्पना भी मत करो। जैसे यहाँ पर तुम्हें "रेल" लिखने की आवश्यकता है, तो इस अन्य भाषा के शब्द को तुम ज्यों का त्यों लिख सकते हो यह शब्द अन्य भाषा का है तो क्या हुआ पर यह शब्द सब लोगों में प्रचलित है। "रेल" की जगह "वाष्पीय शकट" या "वाष्पीय यान" लिखना ठीक नहीं है। ऐसी अवस्थाओं में तुम्हारी रचना निर्दोष होनी चाहिये।

प्रत्येक शब्द-समूह या वाक्य रचना में विराम-चिह्नादि यथावत रहने चाहिये। जहाँ तक हो छोटे छोटे वाक्यों की रचना करो। यथासम्भव पूर्णविराम चिह्नों को बढ़ाओ। जो लेखक एक वाक्य में कई बार पूर्णविराम चिह्नों का प्रयोग करता है, उनकी

रचना प्रायः जटिल हो जाती है और कभी कभी वाक्य का भाव और अर्थ भी उलट जाता है। जिस बात पर तुम्हें पढ़ने वालों का विशेष ध्यान आकर्षित करना है, उसको सरल भाषा में कई प्रकार से लिख कर समझाओ।

प्रायः लेखक वाक्य के आरम्भ में "यद्यपि" लिखकर उसके दूसरे खण्ड के आरम्भ में "तथापि" की जगह "किन्तु" लिख देते हैं। जैसे "यद्यपि आप घर गये किन्तु पुस्तक न लाये" यहाँ "किन्तु" न लिखकर "तथापि" होना चाहिये। इसी तरह "जब" की पूर्ति "तब" से, न कि "तो" से होनी चाहिये। जैसे "जब राम आया तो श्याम गया।" यहाँ "तो" की जगह "तब" होना चाहिये। पर जहाँ वाक्य के आरम्भ में "यदि" आया हो, वहाँ वाक्यपूर्ति के लिये "तो" लिखना चाहिये, न कि "तब"। जैसे "यदि इसे मैं कर सकता, तब अवश्य कर डालता।" यहाँ "तब" की जगह "तो" का लिखना ही ठीक है। इसी प्रकार जहाँ "जिस समय" आये, वहाँ "उस समय" और "जहाँ" के साथ "वहाँ" अवश्य आना चाहिये।

तुमको निबन्ध समाप्त करते समय, एक बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। अर्थात् विषय को सहसा मत छोड़ दो। विषय की समाप्ति क्रमशः होनी चाहिये। साथ ही जिस मुख्य-विषय को तुमने अपने लेख में प्रतिपादित किया है, उसका संक्षिप्त आशय निबन्ध की समाप्ति में अवश्य आना चाहिये।

अब हम नीचे कुछ निबन्धों का नामोल्लेख करते हैं, साथ ही उन निबन्धों में जिन मुख्य बातों का समावेश होना चाहिये, उनकी सूची भी प्रत्येक विषय के नीचे दिये देते हैं।

विचारबद्ध-निबन्ध

१—परिश्रम

१—परिश्रम किसे कहते हैं ?

२—परिश्रमी पुरुष के चित्त और शरीर पर परिश्रम का कैसा प्रभाव पड़ता है ?

३—परिश्रम से लाभ।

४—जो परिश्रमी नहीं हैं, उनकी दुर्गति का उल्लेख कर परिश्रमी होने के लाभ दिखलाओ।

५—प्रसिद्ध परिश्रमी लोगों ने संसार में जो प्रसिद्ध कार्य किये हैं, उन्हें दिखलाओ।

६—परिश्रमी बनने का अभ्यास किस प्रकार डालना चाहिये ?

२—आरोग्यता

१—आरोग्यता की परिभाषा।

२—आरोग्य और रोगी मनुष्य की दशा का चित्र खींच कर, दोनों प्रकार के मनुष्यों के सुख दुःखों एवं हानि लाभ को लिखो।

३—आरोग्य होने के उपाय लिखो, जिनसे मनुष्य आरोग्य रह सकता है।

४—अपने कथन की पुष्टि के लिये, किसी आरोग्यपुरुष का वृत्तान्त लिखो।

३ हिंसा

१—हिंसा किसे कहते हैं ?

२—हिंसा क्यों बुरी है ?

३—हिंसा करने की प्रवृत्ति क्योंकर उत्पन्न होती है ?

४—इसको दूर करने के उपाय।

५—हिंसा से मनुष्यों की [illegible] हानि होती है [illegible] महात्मा [illegible] और अहिंसा का महत्त्व प्रकट करो।

४ [illegible]

१—[illegible] है

२—[illegible] है

३—[illegible]

४—[illegible]

५—[illegible] है

[illegible] हैं।

६—[illegible] हैं।

५ [illegible]

[illegible] है ?

[illegible] है ?

३—शारीरिक बल और वेग उसमें कितना है?

४—उसका चमड़ा, हड्डी, मांस को लोग किस काम में लाते हैं?

५—मनुष्य-जाति का उसके द्वारा कुछ काम निकलता है या नहीं।

६—उसका खाद्य पदार्थ।

७—यदि उसमें कोई विशेष गुण पाया गया हो, तो उसका भी उल्लेख करो।

६—वृक्ष विशेष

१—किस भूभाग में देखा जाता है?

२—उसकी लंबाई और फैलाव कितना होता है?

३—उसके पत्ते, डालियों, फूल आदि का वर्णन।

४—उसकी लकड़ी, पत्ते आदि किस काम में लाये जाते हैं?

५—कितने दिनों की उसकी आयु होती है?

६—वह फलता फूलता है कि नहीं? यदि फलता फूलता है तो किस ऋतु में या वर्ष में कितनी बार?

७—विशेष गुण, यदि उसमें कोई हो।

७—मनुष्य विशेष

१—कहां का रहने वाला है?

२—उसके शरीर की गठन और रूपरंग, चालढाल, रहन सहन, आचार विचार, बल पराक्रम, खान पान का वर्णन करो।

३—विद्या और ज्ञान का उल्लेख करो।

४—उसके वर्णन करने योग्य कार्यों का उल्लेख करो।

५—उसके जीवन की उपदेश जनक घटनाओं का वर्णन करो

६—अन्य देश-वासियों की अपेक्षा उसमें जो अधिक गुण व दोष हों, उन्हें भी लिखो।

८—राजा

१—कब और किस नगर या ग्राम में जन्मा ?

२—किस प्रकार पाला पोसा गया ?

३—शिक्षा।

४—राज्य की प्राप्ति—अर्थात् पिता से पाया, अनाश्रित मिला या बाहुबल से उपार्जन किया ?

५—अधिकार प्राप्त होने पर प्रजा के साथ बर्ताव।

६—उसके शासन काल में प्रजा की भलाई या बुराई हुई ?

७—लड़ाइयां जो हुई हों और उनकी हार जीत से जो हानि लाभ हुए हों।

८—प्रजा के हित के लिये जो कार्य्य किये हों, जैसे नगर तालाब, पाठशाला कारखाना धर्मशाला, महसूल व कमी या उसे उठा देना आदि।

९—यदि कोई नया आईन बना हो।

१०—अधिकारियों के साथ बर्ताव।

११—सन्तान तथा रानियों की संख्या।

१२—मृत्यु।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

६ [illegible]

७ [illegible]

८ [illegible]

९ [illegible]

१०—[illegible]

११—[illegible]

१२ [illegible]

[illegible]

१—[illegible]

२—[illegible]

३—[illegible]

[illegible]

५—मानसिक भावों का प्रभाव हमारे मुख पर किस •• झलकता है ?

६—हँसने से शरीर पुष्ट और मोटा होता है।

७—भय और चिन्ता से शरीर बिगड़ता है और दृढ़ विश्व एवं निश्चिन्तता से सुधरता है।

८—शरीर की उन्नति मानसिक उन्नति पर और मानसि उन्नति शारीरिक उन्नति पर निर्भर है।

१५–दिवाली

१—उत्पत्ति।

२—उपयोग।

३—सफ़ाई एवं रोशनी से लाभ।

४—दिवाली के दिन क्या क्या होता है ?

५—जुए की बुरी प्रथा की निन्दा।

१६–नाटक

१—नाटक किसे कहते हैं ?

२—उसकी सृष्टि किस प्रकार और क्योंकर हुई ?

३—प्राचीन काल में नाटक कब से प्रचलित है ?

४—नाटकों का प्रभाव जो देखनेवालों पर पड़ता है।

५—कैसे नाटक दर्शकों को देखने चाहिये ?

६—बुरे नाटकों के कतिपय नाम बतलाओ और उनके दे से जो हानियाँ होती हैं, उन्हें बतलाओ।

१७—समाचार-पत्र

१—किसे कहते हैं

२—उनसे क्या लाभ है?

३—कैसे समाचार-पत्र समाज और देश की उन्नति कर सकते हैं?

४—समाचार-पत्र पढ़ने चाहिये कि नहीं? यदि पढ़ने चाहिये तो उनके पढ़ने से क्या लाभ होते हैं?

५—समाचार-पत्रों द्वारा राजा और प्रजा में किस प्रकार सम्बन्ध दृढ़ हो सकता है?

१८-डायरी या रोज़नामचा

१—डायरी किसे कहते हैं?

२—सत्कार्य्य करने की आदत डालने के लिये डायरी रखना आवश्यक है।

३—डायरी भरने के लिये प्रतिदिन कोई समय निर्दिष्ट कर लेना चाहिये।

४—डायरी लिखने से हम जान सकते हैं कि हममें कितना काम करने की शक्ति है।

५—प्राचीन घटनाओं का लेखा रखने के लिये डायरी का रखना परमावश्यक है।

१९-मित्रता

१—मित्र के लक्षण।

२—मित्र की आवश्यकता।

३—मित्रता कैसे करनी चाहिये?

४—शिक्षा से क्योंकर लाभ पहुँचता है? उसे उदाहरण दे कर समझाओ।

२० कसरत

१—कसरत किसे कहते हैं?

२—कसरत के गुण दोष कुछ बतलाओ।

३—हिन्दुस्तानियों के लिये कौन सी कसरत उपयोगी है?

४—किन लोगों को कसरत करनी चाहिये और किन को नहीं?

५—कसरत के लाभ।

६—कसरती मनुष्यों के कतिपय उदाहरण।

आदर्श-निबन्ध

धैर्य्य

यह मनुष्य में एक विलक्षण गुण है। जितने काम हैं, वे धीरज
ा से अच्छे होते हैं। चपल पुरुष से प्रायः काम बिगड़ते हैं।
जसको धैर्य्य नहीं वह थोड़ी ही बात में घबरा जाता है और
घबराने के कारण फिर उसको यह विवेक नहीं रहता कि क्या
मारा कर्त्तव्य है और क्या नहीं। तब फिर वह बिना विचारे और
बना समझे चाहे जो कर डालता है, तो यह कब सम्भव है कि,
स प्रकार के काम ठीक ही उतरें। ऐसा प्रसिद्ध है कि—

" बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय॥"

जो लोग थोड़ी ही घबराहट में अपने से बाहर हो जाते हैं, जने
ाने के पांव पड़ते हैं, सन्देह और चिन्ता के ज्वर से पीड़ित होते हैं,
उनसे अधिक और कौन दुःखी होगा? इसलिये सदा धीरज ही
धरना चाहिये।

जैसे कहा है कि -

कवित्त

देखे काज हैंहैं हाय थान सब चूरि जैहैं,
कादरता ऐसी कवौं भूलिह न करिये।

करिके विवेक को सुसाज निज जी में पचि,
रचिके उपाय निज व्याकुलाई हरिये॥
ईसुर को याद कै जनैये पुरुषारथ कों,
"दत्त" कहूँ काहू के न जाय पाँव परिये।
हारिये न हिम्मत सुकीजै कोरि किम्मति कों,
आपति में पति राखि धीरज को धरिये॥

इस संसार में ऐसे क्षुद्र जन अनेक हैं जो कुछ भी शे
उपस्थित होने से घबरा के कुएँ में गिर के प्राण दे देते हैं, अ
विष शस्त्रादि से आत्मघात कर लेते हैं। कितने ही अधीर पु
आग लगी देख घबरा के घर के कोने में घुसने जाते हैं
निकलने का पथ भूल, प्राण दे देते हैं, कितने ही वन में ि
और भालू का नाम सुनते ही काठ के खिलौने से खड़े हो जा
और वन्य पशुओं के ग्रास में पड़ते हैं; कितने ही घबराये परि
के समूह को अल्प-सामर्थ्य तीन चार डाकू लूट लेते हैं और
बेचारे धीरज विहीन हो आपस में एक दूसरे को धरते पक
रोते हाहा करते लुट जाते हैं। धैर्य को छोड़ देने से कितने अ
होते हैं जो कहे नहीं जा सकते। देखिये, धीर और अधीर
कितना अन्तर होता है। एक अधीर पुरुष को, दूर से सिंह
देखते ही घिग्घी बँध जाती है और दूसरे धीर पुरुष, जब तक ि
लपक के उनके पास आवे, तब तक उसे गोली भर कर मारते
किसी एक पुरुष ने सिंह का बच्चा पाला। वह सदा उस पर ह
फेरता, उसे प्यार करता और अपने साथ रखता। सिंह का ब
उससे ऐसा हिल मिल गया था कि उस मनुष्य ने उसे कुत्ते ऐ
बना लिया था। धीरे धीरे वह सिंह का बच्चा बड़ा हो पूरा प्र
सिंह हुआ, पर तो भी उस सिंह का अपने स्वामी पर वैसा ही

था. मानो उस सिंह को यह ज्ञान ही न था कि यह स्वामी वैसा ही रुधिर-मांस का पिण्ड है जैसा मैं प्रतिदिन बड़े प्रेम से खाता हूँ। यह सिंह अपने स्वामी को दूर से देखते ही दौड़ के आता और पूँछ सटकाते पाँव चाटने लगता : उसके पीछे पीछे फिरता और प्रत्येक बात में उसे प्यार की आँख से देखता था।

एक समय एक कुर्सी पर उसका स्वामी बैठा था और हाथ में एक छोटी सी किताब लिये पढ़ रहा था। भोर का समय था, ठंढी ठंढी बयार चल रही थी। सामने फुलवारी के पौधों के पत्ते ओस की छोटी छोटी बूँदों का बोझा उठा रहे थे। कुन्द और गुलाब की सुगन्ध से आकाश भी प्रसन्न देख पड़ता था। इतनी देर में सामने का पिंजरा उसकी आज्ञा से खोला गया और सिंह भी पूँछ हिलाता उसके पास आया। उसके स्वामी ने पहिले उसके सिर पर हाथ फेरा, फिर पुचकार चुचकार गर्दन झाड़ अपनी बाँई ओर बैठाया। वह भी उबासी ले कुछ बाँई ओर कुछ पीछे तक कुर्सी घेरता हुआ बैठ गया।

उसका स्वामी पुस्तक पढ़ता जाता था। कभी कभी अपने पाले हुए सिंह के बच्चे को देखता और कभी बाँया हाथ उसके कान और सिर पर फेरता और अपने को देख चारों ओर इस भाव को आँख पसारता कि मेरे ऐसा दुनिया में और कौन है। जिस सिंह के नाम सुनते लोगों की छाती पकती है, वही मेरे साथ बकरी की भाँति पूँछ हिलाता दौड़ता है। किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे समय मेरे सामने आवे। मैं यदि अँगुली से भी संकेत करूँ, तो यह बड़े बड़े गजराजों का भी कुम्भस्थल चीर डाले और रुधिर की नदी बहा दे। इन्हीं घमंडों में भर इधर उधर देख भाल वह फिर अपने हाथ की पुस्तक पढ़ने लगा।

उसका बायाँ हाथ बाईं ओर कुरसी के नीचे लटकता था। यह सिंह उसी हाथ के पास मुँह किये बैठा था और धीरे-धीरे उसका हाथ चाटता जाता था।

उसके स्वामी की उधर कुछ भी दृष्टि न थी, यहाँ तक कि [उसे] हाथ चाटते चाटते लगभग आध घंटा हो गया। तब उसकी [जीभ] की रगड़ से हाथ में कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह को जीभ में कुछ स्वाद लगने लगा। जब इसका हाथ कुछ दुखने लगा तब इसने अपना हाथ अकस्मात् खींचा। उस समय यदि सिंह ने जीभ के अलगेट से हाथ खींचने न दिया और इसने [ज्यों ही] झटका त्यों सिंह गरज उठा। इसने देखा कि सिंह की त्योरी बदल [गई]। तब यदि उसी समय घबरा फिर हाथ खींचते तब तो समाप्त [ही था], पर इसने धीरज से काम लिया और हाथ वैसे ही सिंह के मुँह [के] पास रखे रहे और फिर पैरों की ओर मुँह कर अपने नौकर [को] पुकारा। नौकर के सामने आते ही इस [illegible] ने कहा [illegible] बन्दूक भरके और बहुत [illegible] है [illegible] मारना, [illegible] यह नौकर भी [illegible] और बन्दूक लाया। कदाचित् [illegible] होगा। [illegible] कोई मनुष्य, समझ है कि [illegible] [illegible] होगा।

[illegible] कि, [illegible]।

इसीलिये, वह बेचारा यदि पहिले ही घबरा जाता तो मारा जाने में क्या सन्देह था?

पुराणों में जितनी नल, राम, युधिष्ठिर आदि की कथायें हैं, उनमें आदि से अन्त तक धैर्य्य का प्रकरण भरा है और जितने आज तक एक से एक पराक्रमी और धीर, प्रतापी तथा यशस्वी पुरुष हो गये हैं, उनकी उन्नति का प्रधान कारण धैर्य्य ही मिला है

क्षमा

क्षमा कुछ साधारण गुण नहीं है। जिस पुरुष में क्षमा नहीं है वह अति तुच्छ समझा जाता है। जो ऐसे होते हैं कि, किसी से कुछ अपकार की गन्ध हुई कि, उसका अपकार करने को तैयार; किसी के मुख से भूल से कोई कड़ा शब्द निकला कि, आप गालियों का वर्षा करने लगे; किसी ने अल्प अपराध भी किया तो उस पर झट टूट पड़े; वे अति तुच्छ समझे जाते हैं। जिनको क्षमा नहीं उनके लड़के वाले बहुत दुर्बल होते हैं, क्योंकि वे बात बात में घूरे और झुड़के जाते हैं और बात बात में मार खाते हैं। उनसे जी खोल कर कोई बात नहीं करता, क्योंकि यह आशङ्का सब को रहती है कि बातों में कोई शब्द अनुचित न निकल जाय। जिनको क्षमा नहीं है उनसे कितने ही काम झटपट में ऐसे अनुचित बन जाते हैं कि, पीछे जन्म भर पछताना रह जाता है। क्षमा-रहित पुरुष राजसभाओं में तो कभी टिक ही नहीं सकते। जैसे किसी कटोरे में जल हो तो उसमें जहाँ कुछ और पदार्थ डाला कि, जल उबला, यह स्वभाव अधम पुरुषों का है।

[illegible] क्षमा जी को यह गुन बहुत साथ शुद्ध [illegible] क्षमा गुण देख सबको आश्चर्य [illegible]

[illegible] इसलिये [illegible] चित्त में स्थिर करके रखना चाहिये कि-

दोहा

[illegible] सकल गुन सों बड़ो, क्षमा पुन्य को मूल ।
क्षमा जासु हिरदे रहै, तासु दैव अनुकूल ॥
अपराधी निज दोष तें, दुख पावत सब ठाम ।
क्षमा सहित निज गुनन तें, सुखी रहत सब ठाम ॥"

आशा

[illegible] का एक छोटा [illegible] इस पर [illegible] विचार किया जाय तो उसमें [illegible] यहां तक कि संसारी [illegible] कहना भी [illegible] कारण [illegible] मनुष्यों का [illegible] हैं। [illegible] आ जाता है। [illegible] आशा [illegible] यदि न होती तो [illegible] वीर-पराक्रम

गदा से उरु भङ्ग हुए, मरणोन्मुख दुर्योधन का अश्वत्थामा को सेनापतित्व पर अभिषेक करके, सुसुप्त अवस्था में पाण्डवों के नाश के लिये शिविर (कैम्प) में भेजना* इसी आशा की प्रेरणा नहीं तो और क्या थी ?

निराशा मनुष्यों के मन में बहुत काल तक नहीं ठहरती, या यों कहिये कि ठहरती ही नहीं। यदि किसी तरह की आशा पूर्ण न होने पर क्षण काल के लिये निराशा उत्पन्न हो भी गई, तो आशा की चपेट से उसे शीघ्र हट जाना पड़ता है। जब कभी आशा चिरकाल के लिये वास कर लेती तब मनुष्य कार्य्य-सिद्धि की सीमा तक पहुँच सकता है।

व्यवहार में निरत रहनेवाले संसारी मनुष्यों का "आशाहि परमं सुखम्" यही मूल मन्त्र होना चाहिये। आशा फलीभूत होने की आशा न हो तो मनुष्यों की कैसी दशा हो ? आशा की तरंगों में मन सदा आन्दोलित रहता है और प्रतिक्षण मनोरथरूपी बुलबुले उठा करते हैं। महान् से महान् कार्य्य की उत्पादक और प्रवर्तक यही आशा है, भूमि-कर की अधिकता और बार बार ईति-भीति से सताया गया कृषक, जिसने ग्रीष्मकाल में यह संकल्प कर लिया है कि इस ऐसी कष्टसाध्य जीविका के बदले नौकरी ही से पेट पालेंगे, पावस के प्रारम्भ होते ही कृषिकर्म्म का आयोजन करने में निमग्न हुआ देख पड़ता है। इसका प्रबल कारण यही है कि, उसके शुष्क हृदय क्षेत्र में यह आशा अंकुरित हो जाती है कि, इस वर्ष शायद समां हो जाय।

---

* इसकी पूरी कथा हमारे संग्रहीत "हिन्दी महाभारत" में है जिसका मूल्य १।) रु० है।

विद्यार्थी जो अविश्रान्त परिश्रम से विद्याध्ययन में लगा है, उसकी यही आशा है कि एक दिन संसार में यशस्वी हो जाँयगे और इसी कारण स्वान-निद्रा, बक-ध्यान, स्वल्प-भोजन आदि कष्ट साध्य व्रतों का अनुष्ठान कर, स्वाद, शृङ्गार, कौतुक व शारीरिक सुखों को तृणवत् जान, लगातार परिश्रम करते रहने के कारण शरीर सूख कर हड्डी रह गया, गरदन हाथ भर लम्बी हो गयी कपोल सूख कर चिमट गये, आँखें धुँधुरा गयीं; ऐसी कठिनता से विद्याध्ययन किये जाने पर भी, परीक्षा में फेल होने पर कौन साहस कर सकता है कि, फिर वह आगे पढ़े? कभी नहीं। किन्तु यही आशा उसके कर्णकुहर में मञ्जीवन मन्त्र का उपदेश करती है कि, आने वाले वर्ष में तुम अवश्य उत्तीर्ण होगे। इसीसे वह यादे परिश्रम में फिर मग्न देखा जाता है। सृष्टि के आरम्भ काल से मनुष्यों की प्रवृत्ति सुख की ओर रही है। लड़कों का पढ़ना, कृषकों का खेती करना, व्यापारी का क्रय विक्रय, राजाओं का दिग्विजय इत्यादि जो अनेक उद्योग असीम कष्ट और परिश्रम के साथ किये जाते हैं, सब का मूल उद्देश सुख प्राप्ति की आशा है। सुख सम्पत्ति की आशा यही अच्छी है। इससे मनुष्य नये उत्साह से कार्य्य में प्रवृत्त होता है। यद्यपि यह आशा फलदायिनी नहीं होती, तथापि ईश्वर ने इसे मनुष्य के मन में उसी भलाई ही के लिये स्थान दिया है। जो हो, बलवती आशा ही की प्रेरणा से मनुष्य सुख-प्राप्ति के लिये उद्योग करता है। आशा मनुष्य के जीवन-रूपी दीपक का आवरण (ढकना) है। जिस तरह प्रचण्ड पवन आदि के झकोर से दीपक बिना ढकना के स्थिर नहीं रहता, उसी तरह बाहरी दुःख और चिन्ता रूपी आँधियों में रक्षा करने वाली यही आशा है। आशा दुःख के पहाड़ों को चूर्ण कर देने वाला वज्र है। यदि दुःख में सुख की आशा न होती, तो उस असह्य दुःख से पार पाना

कठिन होता। यद्यपि सांसारिक लोग इस आशा को सुख-प्राप्ति का एक मार्ग बताते हैं, तथापि राजर्षि भर्तृहरि सरीखे विरक्त लोग इसे बन्धन का कारण और सर्वथा त्याज्य मानते हैं।

अब पाठकगण ही अपना लाभ व हानि विचार कर और इतिहासों पर दृष्टि डाल कर सोचें कि आशावान् होकर, कार्य्य में तत्पर होने से हमारा लाभ है, या निराश होकर, हाथ पर हाथ धरे रहने से?

कर्त्तव्य-पालन

कर्त्तव्य-पालन में कुछ कठिनाई अवश्य होती है; किन्तु इससे हमें दुख नहीं समझना चाहिये। कर्त्तव्य-परायण मनुष्य को कभी कभी सांसारिक आमोद प्रमोद से भी वञ्चित रहना पड़ता है, कष्ट भी कभी भोगने पड़ते हैं, कभी कभी दुरात्माओं द्वारा उसका अपमान भी किया जाता है और उसकी हँसी भी उड़ाई जाती है, परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी विद्वानों का मत यही है कि कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ रहो। कर्त्तव्य को अपना शासक समझना ठीक नहीं है; किन्तु उसे अपना सच्चा मित्र और सखा समझना चाहिये, क्योंकि यह मनुष्य को सांसारिक चिन्ताओं से बचा कर, शान्ति-निकेतन के पथ की ओर अग्रसर करता है। कर्त्तव्य-पालन करते हुए, संसार की बहुत सी बातें छूट जावेंगी। कुछ उनमें बुरी भी होंगी और कुछ भली भी; किन्तु जो भली बातें छूट जावेंगी उनका मूल्य कर्त्तव्य के समक्ष बहुत कम है। किसी मनुष्य ने अपने जीवन को स्त्री-प्रेम ही में आनन्द समझ कर बिताया; किसी मनुष्य ने प्रसिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा ही में और किसी

मनुष्य ने धन प्राप्ति ही में जीवन व्यतीत किया, परन्तु कर्त्तव्य भूल कर, इन मार्गों पर चलने से इन्होंने *बदनामी भी खूब उठा* यह सम्भव है कि, कर्त्तव्य-निष्ठ मनुष्य अधिक धन सम्पत्ति वञ्चित रहे, तो भी वह जिस कुल या जाति में जन्म लेता उसके अन्तरात्मा में बड़ी ही सम्पत्ति छोड़ जाता है। जो ध कर्त्तव्य-पालन करते हुए प्राप्त होता है, उसीसे सच्चा आनन्द प्र होता है। अन्यथा वह चिन्ता, भय और दुःख का कारण होता और अनुचित बातों में व्यय होता है। यदि सोच विचार कर क कर्त्तव्य तत्पर रह कर, धन कमाया जाय और उनका सदुपयोग कि जाय, तो स्वयं और दूसरे जन भी उससे बड़ा आनन्द भोगते धनाढ्य पुरुष-कर्त्तव्य हीन होने से अपने ऊपर दुःख और आप लादता रहता है और मरने के साथ ही उसका नाम भी जाता है।

कर्त्तव्य के पथ पर चलना मनुष्य का धर्म तो है ही। कि वैसा करने से वह कर्त्तव्यहीन और चरित्रहीन मनुष्यों में कर्त्तव्य-निष्ठता और उत्साह की जागृति करता है। कर्त्त पालन से मनुष्य को प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि तथा हृदय को शा प्राप्त होती है और मनुष्य का जीवन सफल होता है। धन वे, जो अपने कर्त्तव्य-कार्यों को करते हुए, अपना जीवन व्यत करते हैं। विशेषकर धन्य वे हैं, जो अपने देश की कल्याण काम से अपने स्वार्थ पर लात मार कर, कर्त्तव्य कार्य करते हैं। एक स्पेन वालों और पुर्तगाल वालों में लड़ाई हुई। स्पेन में मूली मेल नामक एक पुरुष रोगग्रस्त था। इसने अपनी खाट पर पड़े सोचा कि, मुझे मरना तो पड़ेगा ही, फिर खाट में पड़ा पड़ा मरूँ? स्पेन के प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि, वह अपने देश रक्षा के लिये युद्ध करे। फिर मैं भी रणभूमि में जा कर क्यों

शरीर त्यागूँ ? ऐसा सोच समझ कर, वह युद्ध-स्थल में गया और वहाँ जाकर ख़ूब लड़ा । लड़ते ही लड़ते उसने अपना शरीर त्यागा । परन्तु क्या उसका नाशमान शरीर स्पेन वालों को आज तक कर्त्तव्य-निष्ठा का उपदेश नहीं दे रहा है ? रोगग्रस्त अवस्था में भी उसके लड़ने का फल यह हुआ था कि स्पेनवाले ख़ूब लड़े थे । इसी प्रकार हम भी उसी रोगी के समान हैं, जिनकी मृत्यु निश्चित है । मरना तो पड़ेगा ही, फिर हम क्यों न कर्त्तव्य करते हुए आनन्द से मृत्यु की गोद में जा पधारें । मृत्यु का भय कायरों और कर्त्तव्य-हीन पुरुषों को होता है । कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुष मृत्यु की कुछ भी चिन्ता नहीं करते । वे मृत्यु को आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में परिवर्तन होना समझते हैं । जिन्होंने गुरु गोविन्द सिंह और सुक़रात आदि पुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़े हैं, वे इस बात को भली भाँति जानते हैं । जब यह बात है, तब कर्त्तव्य-कार्यों के करने में मृत्यु का भय क्यों करना चाहिये ? डरना चाहिये अधर्म और अपकीर्ति के कार्यों से । कर्त्तव्य-पालन में चाहे जितने दुःख उठाने पड़ें, परन्तु कर्त्तव्य से विचलित न होकर पुरुषार्थ से ही काम लेना है, सुख यही है । चरित्रवान् पुरुष के चरित्र और नाम पर कर्त्तव्य-कार्यों को करते हुए जेलख़ाने में जाने पर भी कलङ्क नहीं लगता । कर्त्तव्य-तत्पर पुरुष के लिये जेलख़ाना भी कीर्ति लाभ करने का अवसर हो जाता है । ऐसे पुरुष चाहे जिस दशा में रहें, क्योंकि उनका गौरव है और कीर्ति तो मरने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ती । उनकी मृत्यु हो जाने पर भी उनके कर्त्तव्यों के कारण उनका नाम अमर हो जाता है । साहित्य और इतिहास पुकार कर कह रहे हैं कि ऐसे अनेक महान् पुरुषों के नाम और काम आज तक प्रकाशित कर रहे हैं ।

हम लोग कल्याणकारी कार्यों में रात दिन लगे रहते हैं और उनके करने के लिये अनेक प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु हमको अच्छे काम करने का बहुत कम आनन्द प्राप्त होता है। कार्य करने में सफलता की न [illegible] चाहिये। काम करने के पीछे ही आनन्द और सुख मिला करता है। सफलता प्राप्त होने में यदि देरी हो तो भी न घबड़ाओ। यदि सफलता शीघ्र प्राप्त हो जाय तो फूल कर कुप्पा न बन जाओ। नियमपूर्वक कार्य करने ही से संसार में सफलता बहुधा प्राप्त हुआ करती है।

कल्याणकारी कार्यों का करना [illegible]

[illegible] का उद्देश्य

[illegible] है। [illegible]

प्रारम्भ मनुष्य जिस दिन से संसार में आता है, उसी दिन से सीखने लगता है और जीवन भर यह काम करता रहता है। हम देखना भालना, चलना फिरना, खाना पीना और काम करना दूसरों ही से सीखते हैं। जितना जो अधिक सीखता है, उतना ही उसका जीवन अधिक उपयोगी होता है, परन्तु शिक्षा ही हमारे जीवन को आनन्द की ओर ले जाने का पथ है। निस्सन्देह शिक्षा मनुष्य को आनन्द-भवन में पहुँचा देने की पक्की सड़क है और आनन्द ही शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य है। शिक्षा बड़ी आवश्यक है, शिक्षा द्वारा ही हम अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना सीखते हैं। शिक्षा का यह अर्थ नहीं है कि किताबें पढ़ने ही से हम ज्ञानवान् बनते हैं। अपने ज्ञान शिक्षा और निरीक्षण से काम लेने पर भी हमको बहुत कुछ सीखना पड़ जाता है। जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है उन्होंने बहुत अच्छा काम किया है, परन्तु उनके अपने कार्यों से पूरा करना बुद्धिमान् का काम नहीं है। सच्चा शिक्षण शिक्षा प्राप्त करने का साधन है। आवश्यक और उचित प्रकार से व्यवहार में लाना चाहिये। एक अंग्रेज़ विद्वान् का कहना है कि, "हमें अपने अध्ययन से पहले ही अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं लेना चाहिये और न इसलिये पढ़ कि जीवन [illegible] चाहिये, इसी से हम सीखते हैं और अच्छा होवें। अपने अध्ययन को न तो दूसरों से लड़ने का निमित्त बनावें और न अपना हित साधन करने का ढंग बनावें, किन्तु अपने अध्ययन से आनन्द की अनुभूति का [illegible] करें।"

[illegible]

"वे ही मनुष्य सर्वसाधारण की सबसे अधिक सेवा करने वाले हैं, जो ऊँचे मकान न बनवा कर लोगों के आत्मा को ऊँचा करते हैं। यह अच्छी बात है कि उच्चपुरुष छोटे मकान में हो, किन्तु पराश्रित न हो। क्षुद्र पुरुषों के अधीन बनकर ऊँचे मकान में रहना अच्छा नहीं लगता है।"

बहुत से विद्यार्थी समझा करते हैं कि, विद्यालय ही शिक्षा के आरम्भ और समाप्ति का स्थान है, परन्तु विद्वानों का मत है कि, शिक्षा का काम विद्यालय ही में समाप्त नहीं होता। शिक्षा ऐसी उत्तम वस्तु है कि, जीवन के अन्त तक इसका उपार्जन करना चाहिए। आज कल यूरप के अनेक जाति देशों में ऐसे पुरुष पाये जाते हैं जो वृद्धावस्था में भी और और देशों की भाषा और नवीन विषयों का अध्ययन आरम्भ करते हैं। शिक्षा बड़े ही महत्व की वस्तु है। यह हमें युवावस्था और वृद्धावस्था और पारलौकिक व्यवहार के लिए तैयार करती है। शिक्षा हमें जीवन और मरण का [illegible] बता कर [illegible] के मार्ग पर लाती है। बहुत लोग समझा करते हैं कि हमें शिक्षा [illegible] प्राप्त करनी पड़ती है कि हम [illegible] प्राप्त कर सकें। [illegible] की संख्या कम नहीं है [illegible] और [illegible] से विमुख रहते हैं, [illegible] प्रकार का [illegible] प्राप्त हो सकता है [illegible] है। [illegible] और यह भी शिक्षा से प्राप्त होता है किन्तु शिक्षा का परिणाम [illegible] नहीं हो सकता है। [illegible] किन्तु शिक्षा के परिणाम [illegible] है। [illegible] का [illegible] है।

कोई कोई लोग रुपये को बड़ा और विद्या को लघु समझते हैं। कोई विद्या को प्रधान मानते हैं और रुपये को दूसरे स्थान पर रखते हैं। कुछ लोग केवल रुपये ही को समझते हैं। कुछ लोग विद्या ही को सर्वस्व समझते हैं। जिन्होंने विद्या को रुपये से बड़ा समझा है, वे पण्डित हैं। जिन्होंने विद्या को सर्वस्व मान रखा है वे महात्मा हैं। जिन्होंने रुपये को विद्या से उत्तम माना है वे साधारण मनुष्य हैं। परन्तु जिन्होंने रुपये को अपना जीवन का लक्ष्य और सर्वस्व मान रखा है, वे बुद्धिमान कभी नहीं कहे जा सकते। दुनिया में ऐसे लोगों को भी जानते हैं जो धनवानों की खुशामद किया करते हैं, उनका जीवन भी घृणित होता होगा। [illegible]

वह उनके विषयों को ग्रहण कर लेता है। बड़े बड़े तत्त्ववेत्ताओं के लोग बहुधा कम पुस्तकें देखी गई हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे हम अपने स्वार्थ और परमार्थ के कर्तव्य को भली भाँति समझ कर, कल्याण के मार्ग पर चलने लग जावें।

काव्य और लोक-शिक्षा

मानव जीवन को उन्नत करने के लिये काव्य भी बड़ा प्रभाव रखता है. कवि भी यदि प्रतिभाशाली हो और उसकी कविता भावानुसार हो तो वह मनुष्य के हृदय में आनन्द और महत्व का भाव उत्पन्न कर सकता है। मानव समाज में [illegible] उत्पन्न करके वह बहुत कुछ काम कर सकता है। यह बात भी सिद्ध है कि, [illegible] के काव्य द्वारा लोग प्रायः शिक्षा लाभ करते हैं। उत्तम हृदय प्रतिभाशाली कविता को समाज का शिक्षक ही समझना चाहिये। इस विषय को और स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। रामायण और महाभारत इन दोनों काव्यों को ही देखिये। इनकी रचना को कितना काल बीत गया है और भारतीय शिक्षा के प्रचार में आज भी इनका महत्व बना ही है, [illegible] रामायण और महाभारत की शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ है। [illegible] हिन्दू [illegible] के हृदय में [illegible] और [illegible] पर निर्भर है। [illegible] हिन्दू जीवन के आधार हैं। हिन्दू [illegible] है। [illegible]

लाभ करते हैं, यह इन दोनों काव्यों से भली भाँति प्रमाणित है। काव्य यद्यपि इतना प्रयोजनीय है, तथापि प्रतिभाशाली कवियों के काव्य के मर्म को समझने वाले कम ही होते हैं, जैसा कि, किसी कवि ने कहा—

"तत्वं किमपि काव्यानां" जानन्ति विरलो भुवि ।
मार्मिकं को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ॥

अर्थात् काव्य के तत्व को कोई विरला ही जानता है; मधुव्रत (भौंरा) के सिवाय पुष्पों के मधुर रस का मर्म और स्वाद जानने वाला कौन है? काव्य से क्या क्या लाभ होते हैं इस विषय में विद्वानों की सम्मति आगे पढ़िये। काव्य के लाभों के विषय में मम्मटाचार्य ने काव्य-प्रकाश में यों लिखा है—"काव्य से यश मिलता है, द्रव्य का लाभ होता है, व्यवहार-ज्ञान की वृद्धि होती है, दुःख का नाश हो कर, शीघ्र ही परमानन्द मिलता है। कविता कान्ता के समान रमणीय उपदेश करती है।" बङ्गला के परम प्रसिद्ध लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र अपने "विविध-प्रबन्ध" ग्रन्थ में लिखते हैं—उद्देश और सफलता दोनों की विवेचना करने पर यह विदित होता है कि, राजनीतिवेत्ता, धर्म्मोपदेष्टा, नीतिवेत्ता, दार्शनिक, वैज्ञानिक इन सब की अपेक्षा कवि ही श्रेष्ठ है। कविता करने के लिये जितनी मानसिक समझ की आवश्यकता है उसके लिये कवि ही उपयुक्त मनुष्य है। कवि लोग जगत् के श्रेष्ठ शिक्षादाता और उपकार-कर्त्ता होते हैं और सब से अधिक मानसिक-शक्ति सम्पन्न होते हैं। बहुधा काव्य को चित्रकला की उपमा दी जाती है। कविता एक बोलती हुई तसवीर है और चित्रकला गूंगी कविता है। सब कलाओं में कविता सर्वप्रधान है; क्योंकि यह भगवान् की अनन्त महिमा को अच्छी तरह प्रकाशित करती है। कवि शब्दों

द्वारा ही काव्य-चित्र खींच देता है और संगतराशी का भी काम अच्छा कर देता है। शब्दों द्वारा यह बड़े बड़े महल और वन पर्वत खड़े कर देता है। संसार भर की सैर करा देता है। इसको सब कलाओं का केन्द्रस्थान ही समझना चाहिये। वास्तव में सभी चित्रों और चरित्रों का प्रदर्शनागार ही है।

काव्य मानव सृष्टि में भगवती प्रकृति की रचना है, क्योंकि प्रकृति ही कवि बनाती है। कविता करने के लिये मानव हृदय में बुद्धि, प्रेम और विचार चाहिये। कवि के सागररूपी हृदय में अनेक लहरें उठा करती हैं। कवि का हृदय विचारों का मन्दिर ही मान लेना चाहिये। कवि के हृदय में कभी कभी एक एक विचार ऐसा महत्त्वपूर्ण उठता है कि, उसको असंख्य मनुष्य ग्रहण करते हैं। काव्य का विज्ञान भी कवियों की रचनाओं की समानता व मनुष्य और रचनाओं के बीच का सिलसिला बतलाता है। इसी कारण वाल्मीकि व्यास और तुलसीदास आज भी पूज्य माने हैं। शेक्सपियर और मिल्टन आदि के रहन व मत का विज्ञान आदरपूर्वक माना है।

एक विद्वान् अनुभवी कविता की प्रशंसा में कहता है

“कविता हमारे हित-साधन के एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। इसका उपयोगी स्वरूप का ज्ञान करने से चित्त प्रफुल्लित होता है और ज्ञान बढ़ता है। कविता संसार के निरीक्षण की सामर्थ्य प्रदान करता है। कविता हमारी मानसिक वृत्ति से उन भावों को उठाती है जिनके द्वारा व्यक्तित्व के मन को विचार रहता है। कविता हमारी शिक्षा का साधन है। कविता मनुष्यत्व का सर्वांग व्यापार व्यक्तित्व सम्बन्ध की ऐकान्तिकता बताती है। कविता स्वभाव और स्वभाव में भेद नहीं है। सर्वत्र सबका हृदय ही उसका विस्तार करता है।”

कवि टेनीसन ने एक बार कहा था "कवि अपनी कविता के विषय में यह प्रसिद्ध कर सकता है कि, ऐसी कविता करना एक बड़ा काम है कि, जिसके द्वारा किसी जाति के हृदय में उत्साह पैदा हो।" यह बात भी स्पष्ट ही है कि, कविता रचने वाला कवि यदि धार्मिक है और उसका निर्मल हृदय यदि सद्भाव से परिपूर्ण है, तो उसका काव्य भी मनुष्यों को धार्मिकता की ओर ले जायगा और उससे समाज का कल्याण और लोकशिक्षा का सच्चा काम होगा।

भारत अपने काव्य-निधि के लिये सदैव प्रसिद्ध है। अब भी उसमें कुछ कविता होती है। परन्तु अब कवियों को अपनी कवित्व-शक्ति को देश के कल्याण की ओर लगाना चाहिये। भारत-महिमा की कविता ने देश में अपूर्व आकांक्षा उद्दीप्त कर दी है। कविता यही है जो निर्जीव जाति के मनुष्यों में भी एक बार फिर जीवदान कर देवे। वर्त्तमान समय में परकीया नायिका के प्रेम के फौवारे छोड़ने वाली कविता की आवश्यकता नहीं है। आज कल तो ऐसी भावपूर्ण कविता होनी चाहिये जिससे सर्वसाधारण की देशोन्नति का उत्साह हो। देश का कल्याण और सर्वसाधारण का लाभ इसी में है। इससे जिन पुरुषरत्नों को भारतीय माता ने कविता करने की मानसिक शक्ति प्रदान की है, उनसे विनय है कि वे ऐसी कविता करने की कृपा करें जिससे नवयुवकों में वीरत्व, पौरुष, आत्मत्याग, स्वदेश-प्रेम, कर्त्तव्य पालन, आध्यात्मिक उन्नति और धार्मिकता के भाव उत्पन्न हों। आपस के रगड़े झगड़े और स्वार्थ की बातें छोड़कर लेखकों और कवियों को "श्रेष्ठ शिक्षा-दाता" और "उपकार-कर्त्ता" बनना चाहिये।

धनोपार्जन और धन का व्यय कैसे करना चाहिये

[illegible]

में उसका भी मन विचलित हो जाता है और वह बहुधा अनुचित रीति से भी अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये उद्यत हो जाता है। नीति में भी कहा है "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।" इसलिये मनुष्य को विशेषतः गृहस्थ को पहिली चिन्ता धन की करनी चाहिये: परन्तु अधर्म्म से कभी धन उपार्जन न करना चाहिये। अधर्म्म से धन कमाने से मनुष्य को कभी सुख नहीं मिलता। फिर ऐसे धन से क्या लाभ? इसके सिवाय ऐसा धन ठहरता भी नहीं और बहुधा पापकार्यों ही में व्यय होता है। मनु के धर्मशास्त्र में भी लिखा है कि, ऐसे मनुष्य की दशा उस वृक्ष के समान होती है जो पहिले बढ़कर ,खूब फूलता फलता है और फिर समूल नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार धन अनुचित रीति से प्राप्त करना हानिकारी है, उसी प्रकार धन का असद्व्यय या अपव्यय भी हानिकारी होता है। जो अपव्यय करता है वह अवश्य रुपये की आवश्यकता में रहता है और अन्त में कष्ट उठाता है। हमारी जाति में पुरुष बहुधा अपव्ययी हैं: इसलिये बहुत ही कम ऐसे लोग हैं जिनके पास धन सञ्चित हो; नहीं तो राजा महाराजा से लेकर साधारण ज़मींदार तक सब ही के पास रुपये पैसे की कमी रहती है। यदि लोग नियम पूर्वक थोड़ा थोड़ा रुपया भी बचाकर जमा करते रहें तो थोड़े ही दिनों में बहुत सा रुपया इकट्ठा हो सकता है जो कि, समय पर काम आवे और आनन्द से ख़र्च कम करके कुछ बचाते रहें तो इनको कभी ऋणी न होना पड़े और न जायदाद को बन्धक रखकर व्यय करने की ज़रूरत पड़े।

धन इसलिये भी नहीं है कि, उसको कन्जूसी से ज़रूरी कामों में भी ख़र्च न किया जाय या द्रव्य पास होने पर भी कष्ट उठाया जाय: किन्तु इसलिये है कि, उसको यथा अवसर आवश्यक कामों

से ध्यान दिया जाय और यदि आपकी [illegible] कविता [illegible] उनको से कुछ बातें के लिये [illegible] रखना चाहिये और [illegible] पर कुछ [illegible] का ध्यान करना चाहिये। जो लोग [illegible] और न [illegible] करते हैं और न [illegible] भी ध्यान करते हैं, वे [illegible] और [illegible] है। [illegible] चाहिये और [illegible] ध्यान करना चाहिये। जो [illegible] करते हैं वे [illegible] करते हैं।

[illegible] और [illegible]

[illegible]

काम और नाम

कयापि खलु पापानामलम् श्रेयसे यतः।
और पुण्यश्लोक तथा—

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः॥
कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं पापनाशनम्॥

इत्यादि नेकनामों के अनेक उदाहरण हैं। केवल अपने अपने काम ही से लोग नेकनाम हो गये। [illegible], जिनकी अनूठी [illegible], विद्यासागर सरीखे देशहितैषी, लार्ड रिपन जैसे शासनकर्ता, शेक्सपियर मिल्टन कालिदास जैसे कवि, सब अपने काम ही से इन लोगों के बीच मानों जी रहे हैं और आचन्द्रतारक जीते रहेंगे। काम के द्वारा नाम करने के उपायों में किसी [illegible] ने एक यह उपाय भी लिखा है।

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् कुर्याद्रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

घड़े फोड़ डाले, कपड़े फाड़ डाले, गदहे पर सवार होकर, चाहे किसी न किसी तरह मनुष्य नाम हासिल करे। कितने ही [illegible] जैसे [illegible] से [illegible] देते भी हो गये हैं जिनके काम की [illegible] उन [illegible] के [illegible] गिर पड़ते हैं। कितने नाम के लिये मर मिटते हैं। [illegible] में मुँह [illegible] रहे, बात न जाय, कोई नाम न रखे, एक को [illegible] न पड़े कि, सब लोग हँसें। नाम रखते हैं, नाम [illegible] करते हैं, नाम धरते हैं, नाम [illegible] हैं, [illegible] हैं, इत्यादि [illegible] मुहाविरे नाम के इशारे [illegible] को [illegible] हैं। पर इन सबके [illegible] कहे उसे [illegible] रहना

है। ईश्वर न करे बुरे कामों के लिये किसी का नाम निकल ग
दूसरा भी कोई बुरा काम करे तो भी नरक में पड़ने को न
चाचा। समाज में उसी की तरफ सब की ओर से अंगुल
की जायगी जो बुरे कामों के लिये प्रसिद्ध हो चुका है। पुलिस
उसी को तके रहेगी। मैजिस्ट्रेट साहब जुदा उसको ते
रहेंगे। योंही भले काम के लिये नाम निकल गया तो चाहे
भी कोई वैसा ही काम करे, किन्तु देशी परदेशियों में नाम
का लिया जायगा। "करे सिपाही नाम सरदार का," "नामी
कमा खाय नामी चोर मारा जाय।" जो बात बिना इस तर
काम की होती है वह बराय नाम को कही जाती है। इन दि
सभ्यों में सभी सभ्यता बराय नाम को है। बुने कपड़ों के
देशी कपड़ों की कदर बराय नाम को है। इस समय के ब्राह्म
द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि उपाधि बराय नाम हैं। दिया
रोज़गारियों में ईमानदारी बराय नाम है। कितनों का नाम
के कारण है, सो भी दाम ऐसी वस्तु है कि, उनका नाम
कैसा, वरन् ख़ुशामद करनी पड़ती है। ऊपर की बातों के स
गोबरदास, तिनकौड़ीमल, थिपरदास के नामों में कौन
ख़ूबसूरती है। इत्तिफ़ाक़ से ऐसों के पास बहुत सा रुपया हु
तो न तो ये आप पेट भर खाते हैं और न दूसरों को खाते
देख सकते हैं और न उस रुपये से इस लोक परलोक का
काम ही निकलता है। ऐसे लोग समाज में यहां तक म
समझे जाते हैं कि, सबेरे भूल से कहीं नाम ज़बान पर आ जा
दिन का दिन नष्ट जाय। ऐसों से सरोकार केवल दाम ही के
लोग रखते हैं और दाक़्न रक्षा करने की भांति उसके
जाना पड़ता है। अन्त में इतना और विशेष वक्तव्य है कि,
और नाम दोनों का साथ दाम चलते रहने से निभ सकता

र्थात् दाम वालों को अपने कामों से नाम पैदा करना जैसा सहज है, वैसा औरों के लिये नहीं है।

स्वास्थ्य-रक्षा

ईश्वर प्रदत्त आनन्द की सामग्रियों में स्वस्थता (तन्दुरुस्ती) सब से बढ़कर है। एक नीतिकार ने संसार के छः मुख्य सुखों में से प्रथम इसकी गणना की है। दुःखों से दूर रहकर प्रकृति के दिये हुए स्वस्थ शरीर का आनन्द भोगना बहुत से धनाढ्यों के भाग्य में भी नहीं बदा है। बात यह है कि वही मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है जो प्रकृति के नियमों का अनुसरण करने में कटिबद्ध रहता है। बहुधा साधारण और धनाढ्य मनुष्य इन नियमों की ओर से असावधानी करते हैं जिससे वे सदैव दुःखी रहते हैं। इन नियमों को चाहे हम अज्ञानता से तोड़ें या अपनी उद्दण्डता से, इसका दण्ड स्वरूप दुःख हमको अवश्य भोगना पड़ता है। इससे उन नियमों को जानना और उनके अनुकूल चलना बहुत आवश्यक है। सबसे प्रथम इस बात का समझ लेना उचित है कि यदि स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय तो बहुत से रोग उत्पन्न ही न हों। किसी रोग के होने पर चिकित्सा करने से यह अच्छा है कि उसे होने ही न दे। हमें सदैव ही अपने जीवन के सब कार्यों में और अपनी आदतों में समभाव रखना चाहिये। हमें कार्य करने में न तो अपने अवयवों पर बड़ा बोझ डालना चाहिये और न आलस्य को बोझ होने देना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्यों को सदैव बीच की राह चलना उचित [illegible] अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखना मनुष्यमात्र का [illegible] इन्द्रियों के वश में पड़ जाना नीचे की ओर जाने [illegible]। अपनी इन्द्रियों के

विषय-भोग में भी समता का विचार रखो। अधिक विषय भोग दुःख का कारण है। भोजन सदैव रुचि के अनुसार करना चाहिये। भोजन जो पथ्य हो इतने परिमाण में खाना चाहिये जिसमें भूख मिट जाय। बहुत से मनुष्य पेट को अधिक भर लेते हैं, अर्थात् जितना वह पचा सकते हैं, उससे अधिक खा लेते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। *जिसका आमाशय ठीक नहीं रहता उसे रात को* अच्छी तरह नींद नहीं आती, बेचैनी रहती है और बहुधा वह स्वप्न देखता रहता है। गरिष्ठ वस्तुओं को न खाओ। भोजन करने में जल्दी करना बुरा है। भोजन को खूब चबा कर निगलना चाहिये। रात को सोने से दो घंटे प्रथम भोजन करना चाहिये। पेट को खूब भर कर फौरन सो जाने से सुखपूर्वक निद्रा नहीं आती और भोजन अच्छी प्रकार से पक नहीं होता। भोजन करके थोड़े काल तक टहलना गुणदायक है। भोजन करने के समय प्रसन्नचित्त रहना और आनन्दपूर्वक स्वाद के साथ भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है। *पीने के लिये पानी शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये।* उत्तेजना देने वाले पेय पदार्थ बुरे हैं। शराब को तो कभी भी न पीओ। पानी हमारे प्यास ही को नहीं बुझाता है, किन्तु हमारी पाचन-क्रिया में भी सहायता देता है। भोजन बनाने, नहाने-धोने आदि सब कामों में स्वच्छ *पानी का व्यवहार करो। मैला पानी* बड़ा हानिकारक होता है। हमें अपनी शारीरिक शुद्धि का बड़ा ध्यान रखना चाहिये। *बिना स्नान किये रहने से हमारी त्वचा ठीक नहीं* रह सकती। इसी त्वचा के लिये वस्त्रों का उपयोग किया जाता है। यद्यपि हम नङ्गे पैदा हुए हैं तो भी सभ्यता की दृष्टि से और ऋतु परिवर्तन के विकारों से बचने के लिये वस्त्रों का पहिनना आवश्यक है। वस्त्रों से हम अपने शरीर की शीतोष्ण से रक्षा करते हैं। दूसरे, शरीर के भीतरी और बाहरी अवयवों में बड़ा

सम्बन्ध है। जो हमारी त्वचा के लिये विष है, वह हमारे शरीरधारी अवयवों को भी विषवत् है। ईश्वर ने हमें इस बात की शक्ति प्रदान की है कि, जब जैसी ऋतु होवे, तब हमारी रहन-सहन वैसी ही हो जावे। हमें ठंड से बचना चाहिये। ठंड बहुत सी बीमारियों को पैदा करने वाली है। ऐसे कपड़े पहिनने चाहिये जिससे शरीर की प्राकृतिक गर्मी रक्षित रहे। स्वास्थ्यरक्षा के लिये कसरत करनी उतनी ही आवश्यक है जितना अच्छा भोजन करना। एक विद्वान् का कथन है कि, यह अच्छा नहीं जँचता कि, हम अपने मस्तिष्क को तो बी०, ए, एम० ए० बना देवें और अपने शरीर के अवयवों को बुरी दशा में रहने देवें। कसरत से फेफड़े, हृदय और त्वचा के काम में सहायता मिलती है। यह पट्ठों को लंबा चौड़ा और दृढ़ बनाती है, पाचन शक्ति को सुधारती है। घोड़े पर चढ़ना और पैदल चलना फिरना भी कसरत ही का अङ्ग है। समता का सदैव ध्यान रखो। कसरत करते समय ठंड न लग जावे, इस बात का ध्यान रखो। कहीं से आ कर एकदम शरीर के कपड़े न उतार देने चाहिये। स्वच्छ वायु प्राण के लिये बहुत आवश्यक है। उसके बिना प्राण ठहर नहीं सकते। शुद्ध वायु का सेवन सुखप्रद है। दूषित वायु रोग का उत्पादक है। मकान खूब हवादार होना चाहिये। स्वच्छता बहुत रोगों को नष्ट करने वाली है। मोरी का मैला पानी, सड़ी गली वस्तुएँ और मरे जानवर वायु को नष्ट कर देते हैं। मकान के आस पास गन्दगी को न रहने दो। मोरी और पाखाने स्वच्छ रखो। छोटे घर में अधिक मनुष्यों का रहना भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारी है। स्वास्थ्य के लिये नींद भर सोना भी आवश्यक है। दिन भर हम जो काम किया करते हैं उससे हमारी शक्ति बहुत घट जाती है। रात को सात आठ घंटे सो रहने से फिर नई शक्ति का सञ्चार हो जाता है।

रात को १० बजे सोना और तड़के बहुत सवेरे उठना लाभदायक है। रात को बहुत देर सोकर, दिन चढ़े तक सोते रहना हानिकारी है।

अपने सिर को ठंडा और पैरों को गर्म रखना चाहिये। शराब इत्यादि मादक द्रव्य सेवन न करने से तुम्हारा सिर साफ़ और निरोग रहेगा। भोजन, वस्त्र, स्वच्छ वायु और निद्रा—इनका उपयोग नियमबद्ध होकर नियमित समय पर करते रहो। यदि इनमें से किसी की ओर से असावधानी करोगे तो रोग तुम्हारे पास आ जायेगा। ये सब बातें सुनने और पढ़ने की नहीं हैं, किन्तु इन सबको अभ्यास में लाकर रोगों से रक्षित रहना चाहिये। अपने शरीर को सुखी और दुःखी रखना हमारे ही ऊपर निर्भर है। अपनी अज्ञानता से हम सब आज कल बहुत क्लेश उठा रहे हैं। हममें से हर एक का धर्म है कि, अपने उन भाइयों का जिनका ज्ञान अल्प है, ज्ञान बढ़ावें और उनके दुःख दूर करने और उनके लिये सुख समृद्धि लाने में सहायता दें।

सफलता क्यों प्राप्त नहीं होती ?

हम लोगों में बहुत कम ऐसे लोग हैं कि, जो नये कार्य आरम्भ करने से पहिले उन कामों के सम्बन्ध में सब बातों की जानकारी रखते हों या उनके विषय में पूरा विचार कर लेते हों। बहुत उत्साह में आकर लोग एकदम कार्य आरम्भ कर देते हैं और ज़रा सी कठिनाई सामने आती है, तब निराश होकर उसे छोड़ देते हैं। किसी काम को बिना उसकी पूरी जाँच और जानकारी के न तो आरम्भ करना चाहिये और न थोड़ी सी कठिनाई सामने आने पर या थोड़ी हानि होने पर घबड़ा कर छोड़ना ही चाहिये। हम लोग दूसरों की देखा देखी बहुधा कार्य करने लगते हैं, परन्तु

यह नहीं देखते कि, उस काम की जितनी योग्यता या जानकारी दूसरे में है उतनी हम में है, या नहीं, या उस व्यवसाय की जितनी सामग्री दूसरे के पास है उतनी हमारे पास है या नहीं। किसी काम में दूसरे को लाभ या सफलता प्राप्त होते देख कर उस काम के करने की हम लोगों में इतनी आतुरता होती है कि, बिना आगा पीछा एवं हानि लाभ का विचार किये हम तुरन्त काम आरम्भ कर देते हैं और उस काम की पूरी जानकारी या पूर्ण सामग्री न होने से बहुधा हानि उठाते हैं और घर की पूँजी भी खो बैठते हैं। इसलिये जिस काम को तुम करना चाहो पहिले उसकी अच्छी तरह जाँच कर लो कि, यह काम वैसा लाभदायक है या नहीं जैसा कि हम समझते हैं, तथा इस काम के करने की योग्यता और सामग्री हमारे पास है या नहीं ? जब आप सब तरह से उस काम के करने योग्य अपने को समझो, तब उसको प्रारम्भ करो। क्योंकि आज कल बिलकुल नौकरों के भरोसे रह कर किसी काम में लाभ उठाना कठिन है। यदि आप उस काम में जानकारी रखते हो तो नौकरों से भी अच्छी तरह काम करा सकते हो, नहीं तो बहुधा गोलमाल हो जाता है। जिस काम को करना चाहते हो उसके विषय में यह भी सोच लो कि, यह काम हमारे चित्त के अनुकूल है या नहीं ? क्योंकि जिस काम के करने में अच्छी तरह मन नहीं लगता उसमें भी सफलता प्राप्त नहीं होती। जिस कार्य को आरम्भ करो उसमें जितना उत्साह आरम्भ में हो उतना ही अन्त तक रखो और उसकी सफलता के लिये बराबर उद्योग किये जाओ। फिर सम्भव नहीं कि, तुमको उसमें सफलता न हो। यदि उस काम में कोई भूल या गलती हुई हो, तो उसका आगे को विचार रखो। अपने सच्चे शुभ चिन्तकों से भी, यदि उस काम में वे जानकारी रखते हों तो, सम्मति और सहायता लेते रहो। जब त [illegible] काम ठीक

ढंग पर न आ जाय, तब तक शहद की मक्खी की तरह उसमें प्रवृत्त रहो और जब तक उस काम में लाभ न होने लगे तब तक भी उसमें वैसे ही प्रवृत्त रहो और शनैः शनैः उस काम की उन्नति करते रहो। जहाँ तक हो सके उस काम को तुम पूरी निगरानी रक्खो। हमारे देश के आदमियों का यह स्वभाव है कि, वे जिस काम को जितने परिमाण में आरम्भ करते हैं बहुधा उमर भर उसे उतने ही में परिमाण में रखते हैं और जो कुछ उसमें लाभ होता है उसी ही से सन्तुष्ट होकर अपने कर्तव्य की इति कर लेते हैं। यूरोपियन लोग किसी काम में जितना अधिक लाभ उठाते हैं, उतना ही अधिक उसको बढ़ाते चले जाते हैं और साथ ही उसकी सुप्रबन्ध रखते हैं। हमारे यहाँ कोई यदि किसी काम को बढ़ा भी देता है उसकी सुव्यवस्था ही नहीं रहती। कारण यही है कि, हमारे देश में सब कार्य नियमपूर्वक नहीं होते और पूर्ण योग्य, परिश्रमी और ईमानदार नौकर भी बहुधा नहीं मिलते। काम को उतना ही बढ़ाना चाहिये जितने का हम सुप्रबन्ध रख सकें और जब हमारे कार्मों में कुप्रबन्ध रहा तो उसके बढ़ाने से लाभ ही क्या? हमारे देश में शायद एक भी ऐसा आदमी न मिलेगा जो दीनदशा से निकल कर निज उद्योग द्वारा करोड़पति हो गया हो। परन्तु यूरोप और अमरीका में बहुत से ऐसे मिलेंगे। आज कल अमरीका में सब देशों से अधिक धनवान लोग हैं। इनमें से बहुत से ऐसे लखपती व करोड़पती हैं जो किसी समय बहुत दीनावस्था में थे और केवल अपनी ही उद्योग से लाखों व करोड़ों रुपये के आदमी बन बैठे हैं। इन्हीं में से एक मिस्टर कारनेगी हैं जिनका नाम उनके दानव्य कार्यों के कारण समाचारपत्रों के पाठकों की जिह्वा पर है। ये एक करोड़ रुपये अमरीका में पुस्तकालयों के लिये और सात करोड़ रुपये स्काटलैण्ड में विद्याप्रचार के लिये दान कर चुके

हैं। जो मिस्टर किस ४ लाख दिल्ली दरबार के अवसर पर भारतवर्ष को दे गये. जिससे बिहार प्रान्त के पूसा स्थान में कृषि-कालेज व कृषि-परीक्षा के क्षेत्र बन गये हैं और जिन्होंने इतना रुपया बूढ़ों के लिये दिया, वे भी इन्हीं मिस्टर कार्नेगी के सार्झीदार हैं। अमरीका में एक करोड़पति चार्ल्स ब्राउन हैं। ये पहिले ऐसी दीनावस्था के पुरुष थे कि, एक गाँव में अनाज की दूकान पर लेखक का काम किया करते थे। पर कई वर्ष हुए एक समाचारपत्र में छपा था कि, अब वे ही एक करोड़ ८० लाख के धनी हैं। वे एक बार खेत में आलू खोदने का काम भी कर चुके हैं। पर वे ही आज अपने गुणों और उद्योग के कारण करोड़पति हैं। उन्होंने लिखा है कि, हर काम में सफलता के लिये परिश्रम, सत्यशीलता, परिमित-व्ययिता व तत्परता की आवश्यकता है। जो व्यवसाय करना हो उसके लिये योग्यता और गुण भी हों। व्यापार करने वालों के लिये उन्होंने लिखा है कि, कब बेचे और कहाँ से खरीदना चाहिये। व्यापारी इस बात को सीखें। व्यापारी सदैव नगद रुपये देकर खरीदें और बेचें। जो जल्द बिके और चाहे लाभ कम हो, तो भी उसे बहुत लाभ का काम समझना चाहिये। अधिक लाभ हो परन्तु बिक्री कम हो, उसको अधिक लाभ का काम न समझना चाहिये। बड़े लाभ के साथ उधार देना खरीदने वाले और बेचने वाले दोनों का जी लुभाना है, परन्तु इसमें अन्त में दोनों का नुकसान होता है। मिस्टर ब्राउन के व्यापार के विषय में ये सिद्धान्त बहुत ही लाभकारी हैं। व्यापार से धनोपार्जन करने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक मनुष्य को इन बातों का विचार रखना चाहिये।

एक दूसरे करोड़पति सी० पी० [redacted] हैं जो रेलों के उच्चाधिकारी और निरचकार थे. [redacted] जाते हैं। पहिले

दशा को कैसे प्राप्त हुआ ? इसका समाधान नीचे लिखे वाक्‍ भली भाँति होता है। हिन्दुस्तान की विद्यारूपी पताका के नि व रक्षक लोग अपने अपने कर्त्तव्य कर्मों से च्युत हो गये। रूप में इसका अर्थ यह है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियों ने, जो समाज के मुख्य वर्ण हैं, अपने अपने कर्मों को तज दिया है विद्वज्जनो ! आप लोगों को यह भली भाँति विदित है कि, ज मनुष्य छोटा सा भी घर बनाना चाहता है, तब उसकी नींव ही दृढ करता है। कच्ची नींव का घर थोड़े ही काल में नष्ट हो जाता है। हिन्दू समाज की नींव ब्रह्मचर्य्याश्रम है। आज कल हम इसको बिलकुल भूल गये हैं, तनिक बुद्धि से काम नहीं लेते। प्राचीन आचार्य्य व ऋषियों के वाक्यों पर कुछ ध्यान नहीं देते। आचार्यों ने मनुष्यों के जीवन को चार भागों में विभाजित किया है। पहिला ब्रह्मचर्य आश्रम, जिसमें विद्याध्ययन, वीर्यरक्षा और शारीरिक व्यायाम कर्त्तव्य हैं। दूसरा गृहस्थाश्रम, जिसमें विद्या, बल, वीर्य व पौरुष जो कि, प्रथम आश्रम में प्राप्त किये हैं, उनका उपयोग या इन्द्रियों का भोग। तीसरा वानप्रस्थ जिसमें दूसरे आश्रम में गृहस्थ सुख भोग चुकने पर इन्द्रिय निरोध अर्थात् दमन व सांसारिक सम्बन्ध त्याग कर वैराग्य प्राप्त होना या ईश्वर में भक्ति उत्पन्न होनी। चौथा आश्रम संन्यास, जिसमें ईश्वर में अटल व अचल भक्ति-श्रद्धा होनी और गृहस्थ लोगों को सदुपदेश देना। यदि लोग इस पर कुछ विचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि, मनुष्य के जीवन का इससे अच्छा विभाग हो ही नहीं सकता। संसार में उन्नति व अवनति का आदि कारण यही एक ब्रह्मचर्या श्रम है। जिसने इस आश्रम के कर्मों को कुशलता सहित नहीं किया, उसको गृहस्थाश्रम का सुख कहाँ ? जिसने गृहस्थाश्रम को पूर्ण रीति से नहीं चलाया, वह कभी वानप्रस्थ के सुख का अधिकारी

न हो सकेगा। जिसने वानप्रस्थाश्रम को नहीं निबाहा है, उसका सच्चा संन्यासी होना दुर्लभ है। इससे विदित होता है कि, संसार में सुखपूर्वक रहना ब्रह्मचर्य्याश्रम पर निर्भर है। आज कल प्रायः ऐसे मनुष्य देखे जाते हैं जो केवल गृहस्थाश्रम को सुधारना चाहते हैं; उसी को सब कुछ समझते हैं। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि, यह उनकी निरी भूल है। जब बीज अच्छा न बोया जायगा, तब पौधा अच्छा कहां से होगा? जब आप विद्याभ्यास न करेंगे, तब सुख कहां से मिल सकता है? विद्याभ्यास के साथ जब वीर्य-रक्षा न होगी, तब बुद्धि आपकी कहां से बलिष्ठ होगी? जब आप शारीरिक व्यायाम न करेंगे, तब कहां से आपको बल व आरोग्यता प्राप्त होगी? आज कल बहुधा यह देखने में आता है कि, विद्याभ्यास व गृहस्थाश्रम साथ साथ चलता है। भला बतलाइये, आज कल के बालक कहां तक नीरोग रह सकते और पढ़ सकते हैं? सदैव ऐसे पुरुष पौरुष-हीन, उत्साहरहित, चञ्चल मन वाले, बात बात पर बदल जाने वाले, अपने कर्त्तव्य कार्यों से मुँह फेरने वाले, साथियों को धोखा देने वाले, परधन व परवस्तु में प्रेम करने वाले, अथवा ऐसे ही अनेक अवगुणों से युक्त होते हैं। आज कल इन दुर्गुणों के दूर करने के लिये उपाय इस तरह से करते हैं जैसे वृक्ष हरा भरा रखने के लिये वृक्ष की जड़ को न सींच कर डालों और पत्तों को सींचते हैं। भला ऐसे उपायों से कभी सफलता हो सकती है? कदापि नहीं। ऐसे जाति व देश-हितैषियों को कभी सच्चे देश-हितैषी न कहना चाहिये। यदि आप सच्चे हितैषी हैं तो उस रोग को जो कि, हिन्दुस्तान भर में फैला हुआ है, जड़ से खोद कर फेंक दो, तब उन्नति की आशा करो। जब तक आप लोग अपने बच्चों को सच्चे विद्यानुरागी, सच्चे वीर्यरक्षानुरागी, सच्चे शारीरिक व्यायामानुरागी न बनालेंगे, देशोन्नति व जाति उन्नति से हाथ धो

शिक्षा विभाग की रिपोर्ट से प्रकट होता है कि सरकारी यू [illegible] और कालिजों की संख्या २१,१५६ है और प्राइवेट [illegible] संख्या १,६२७ है। सरकारी प्राइमरी स्कूल केवल दो हैं और [illegible] के २' ५८५ और प्रजा की ओर से ३६१ हैं। लड़कियों की शि[illegible] के लिये एक सरकारी स्कूल है, परन्तु ४४ बोर्ड के और ७ प्राइ[illegible] स्कूल हैं। ५७ [illegible] और ६ मिडिल स्कूल हैं जिनमें अध्याप[illegible] तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक प्रान्त में कम से कम एक किंडरगार्टन स्कूल है जिसमें बहुत छोटे छोटे लड़कों को खेल द्वारा शिक्षा दी जाती है। कई चीजों पर आकार लिखकर लड़कों से उन्हें मँगवाते हैं। साधारण वस्तुओं को दिखा कर बालकों से प्रश्न पूछते हैं। ऐसी पाठशालाओं में स्त्रियाँ पढ़ाती हैं। ये अध्यापिकायें विशेष शि[illegible] पाने पर नियत की जाती हैं और एक अध्यापिका के अधीन [illegible] [illegible] रहती है। [illegible] तक इनकी संख्या २७२ हो गई थी, जिनमें कुल ५११ पढ़ने वाली स्त्रियाँ हैं।

हिन्दुस्तान की तरह [illegible] पढ़ने लिखने ही के स्कूल [illegible] में नहीं हैं, किन्तु शिल्प शिक्षा (दस्तकारी) के स्कूल भी [illegible] हैं। इनमें नाम बहुत प्रसिद्ध हैं, [illegible] हायर टेक्निकल स्कूल और [illegible] टेक्निकल स्कूल। जो लड़का [illegible] रोजगार करना चाहे उसके लिये [illegible] स्कूल भी है। यहाँ से सार्टिफिकेट प्राप्त करने पर [illegible] [illegible] में बड़ी [illegible] हैं। कृषि शिक्षा की शिक्षा के लिये भी स्कूल है। एक स्कूल में [illegible] [illegible] के लिये कोई [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] १,२०० कृषि [illegible] [illegible] [illegible]

लिये ऐसा प्रबन्ध है कि वह एक वर्ष में कृषिविद्या के मूलसिद्धान्तों को समझ ले। इस सब प्रकार के कृषि विद्यालयों में ५,००० से अधिक छात्र शिक्षा पा रहे हैं और कृषि कालेजों के स्थित होने से अब तक १,५१६ ग्रेजुएट हो चुके हैं। तीसरे प्रकार के स्कूलों में व्यापार सम्बन्धी शिक्षा मिलती है। एक ऐसा सरकारी स्कूल टोकियो में और दूसरा कोबी में है। इनके सिवाय और छोटे छोटे स्कूल हैं जिनमें १०० से अधिक पढ़ाने वाले और हजार के लगभग विद्यार्थी हैं। टोकियो में एक ऐसा भी स्कूल है जिसमें अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मनी, रूसी, इटैलियन, कोरी, चीनी और स्पेनिश, भाषाओं के सिखाने का प्रबन्ध है। जापान में इन लोगों के अध्ययन का भी प्रबन्ध है जो यूनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त करके किसी विशेष विषय का अध्ययन करना चाहें।

इस तरह के स्कूल और कालेजों के खोलने के साथ साथ दूसरे अन्य देशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यार्थियों के भेजने का प्रबन्ध किया गया। सन् १९०२ ई० में कृषि और व्यापार विभाग की ओर से १४ जापानी पश्चिमी व्यापार की शिक्षा पाने के लिये भेजे गये। इसी वर्ष में १०१ विद्यार्थी शिक्षा विभाग की ओर से विदेश भेजे गये। राजकीय विभाग की ओर से इसी साल सात विद्यार्थी बाहर भेजे गये। इसी प्रकार दूसरे विभाग भी बराबर विद्याध्ययन के लिये विद्यार्थियों को बाहर भेजते रहते हैं।

अन्य भाषाओं की अच्छी अच्छी पुस्तकों के जापानी भाषा में अनुवाद किये जाने के लिये भी एक विभाग खोला गया है। इससे स्पष्ट है कि जापान में शिक्षा प्रचार के लिये कितने ढंग से काम किये जाते हैं। इन्होंने थोड़े समय में (अर्थात् ३० या ३५ वर्ष के भीतर) ही असाधारण उन्नति की है। जापान की

मनुष्य संख्या ४ करोड़ है और सम्पूर्ण भारतवर्ष में राजपूत की १ करोड़ हैं और भारतवर्ष का अधिकांश भूम्यधिकार भी इन्हीं के हाथ में है। इस हिसाब से राजपूतों को आमदनियों की चौथाई कम से कम चौथाई प्रबन्ध विद्या-प्रचार के लिये करना चाहिये। यदि चौथाई न करें तो आठवां या दसवां हिस्सा ही उपयोग करें। राजपूतों की अवनति परस्पर के विरोध और विद्या की हीनता के कारण हुई है। जब तक उनमें परस्पर मेलमिलाप न होगा और विद्या का प्रचार न बढ़ेगा, तब तक उनकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। परस्पर मेल मिलाप जब ही हो सकता है जब उनमें जातीयता का विचार हो और उनमें विद्या बल बढ़े।

स्वात्मावलम्बन

स्वात्मावलम्बन एक ऐसा गुण है जिसके बिना मनुष्य में शोभा और शक्ति का विकास नहीं होता। जो स्वात्मावलम्बी हैं वे ही स्वच्छन्दता का सुख उपभोग करते हैं, संसार में सफलता को प्रतिष्ठा वे ही प्राप्त करते हैं। जो स्वात्मावलम्बी नहीं हैं वे मृत्पुतलों के समान हैं। भारतवासियों में स्वात्मावलम्बन का गुण कम हो गया है। इसीलिये वे निर्जीव और निस्तेज के समान हो रहे हैं। जिस समय इनमें आत्म माहात्म्य का भाव उदय होगा, उसी समय से ये जीवित पुरुषों की गणना में सम्मिलित होंगे।

आत्म माहात्म्य विषय पर, अङ्गरेज़ी में "सेल्फ हेल्प" नामक एक अच्छा ग्रन्थ लिखा गया है। हमारी हिन्दी भाषा में भी ऐसे ऐसे ग्रन्थों की बड़ी आवश्यकता है। ऐसे ऐसे उपयोगी विषयों की पुस्तकें जब सर्वसाधारण तक पहुँचें, तब ही हमारे देश का उद्धार होगा, क्योंकि बिना स्वात्मावलम्बन के विचारों के सुधार किये

[illegible] नहीं होती। [illegible] किन्तु [illegible] विद्वान् [illegible]

के करने में लगता है, या जो जिस कार्य को उसके मन में करना चाहता है, उसी को उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है।

जो स्वावलम्बी और अध्यवसायी हैं, वे किसी भी दशा में हों, अवश्य उन्नति कर लेते हैं। स्वामी रामतीर्थ जी ने एक बार स्वावलम्बन के विषय में व्याख्यान देते हुए कहा था कि, "मैं एक विद्यार्थी बड़ी ही दीनावस्था में था। रात में पढ़ने के लिए उसको तेल भी नहीं मिलता था। वह जुगनू इकट्ठे कर के उनको एक पतले कपड़े में बांध कर किताब के ऊपर रख लिया करता था और उनके प्रकाश में पढ़ा करता था। एक दिन किसी दोस्त ने कहा —" आप इतना परिश्रम क्यों करते हो? क्या [illegible] के बजाय हो जाओगे? [illegible] के इतिहास में लिखिए, एक दिन आया कि, वही जुगनू बाजार बन गया।" अध्यवसाय और स्वावलम्बन ही से मनुष्य की कार्य करने की शक्ति [illegible] होती है।

जब मनुष्य किसी बात का पात्र या अधिकारी हो जाता है तब उसका अधिकार उसको स्वयं ही ढूँढ़ लेता है। जहाँ [illegible] में आग जल रही है, वहाँ [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किसी [illegible] ने कहा है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] यदि तुम [illegible] [illegible] [illegible] तुम अवश्य [illegible]। [illegible] [illegible] है कि, यदि तुम [illegible] बना दिए [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। स्वावलम्बन [illegible]

रामतीर्थ जी ने स्वात्मावलम्बन के विषय में व्याख्यान देते हुए यह भी कहा था कि जापानियों ने तीन तीन सौ और चार चार सौ वर्ष के चीड़ और देवदार के पेड़ ऐसे उपजा रखे हैं जो लंबाई में केवल दस दस बालिश्त के बराबर या कुछ ही अधिक ऊँचे हैं। आप विचारें कि क्या कारण है कि इन वृक्षों को वे जापानी लोग बढ़ने से रोक देते हैं? जिज्ञासा करने से यह ज्ञान हुआ कि, वे लोग इन वृक्षों के पत्ते और डालियों को बिलकुल नहीं छेड़ते; किन्तु जड़ को काटते रहते हैं। वे जड़ों को बढ़ने नहीं देते। प्रकृति का यह नियम है कि जब जड़ ही नीचे नहीं जावेगी तब वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा। ऊपर और नीचे का या भीतर और बाहर का इस प्रकार का सम्बन्ध है कि जो लोग ऊपर को चढ़ना चाहते हैं या संसार में फूलना फलना चाहते हैं, उन्हें नीचे अपने भीतर आत्मा में जड़ें जमानी चाहिये। भीतर यदि जड़ें न जमेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फैलेगा। ऐसे ही जिस पुरुष में आत्मनिर्भरता नहीं, वह पुरुष कुछ भी नहीं कर सकता। आत्मविश्वास ही आत्मनिर्भरता का मूल है। मन और इन्द्रियों की चेष्टा को वश में रखना ही धर्म का मुख्य आधार है। आत्मविश्वास की विशेषता ही पुरुष के गुण और धर्म की उन्नति की सीमा है। उन्नति के क्षेत्र में न भागना, पीछे पगों से [illegible] विघ्न की दशाओं में न डरना, वरन् आगे पर ध्यान करना, जिस में [illegible] अनेक विघ्न-बाधा में [illegible] होता है। इस प्रकार [illegible] की [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] आत्मनिर्भरता का मुख्य लक्षण है।

आत्मनिर्भरता पुरुषार्थी पुरुषों की पहचान होती है। इसका [illegible] करके [illegible] में [illegible] [illegible] के [illegible] हैं। [illegible] में भी छिपे हुए ऐसे पुरुष हुए हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सेवावृत्ति मिलने ही में जीवन का मुख्य उद्देश समझते हैं। हमारे पूर्वज ऋषि मुनि जीवन की स्वतन्त्रता ही में सुख [illegible] गये हैं और सेवा-वृत्ति को हमारे धर्मशास्त्रों में श्वानवृत्ति क[illegible] जो हम लोग अब इस श्वानवृत्ति ही को अपने जीवन का [illegible] बनाये रखते हैं, तब तुम समझ सकते हो कि, हम कित[illegible] हुए हैं। आज कल हमने सर्वथा आत्म-निर्भरता को [illegible] आत्म-निर्भरता की रुचि ही बहुधा पुरुषों में नहीं दीखती, [illegible] अब फिर समय पलटा है। अब तक उच्च शिक्षा प्राप्त भार[illegible] केवल नौकरी द्वारा अपना पोषण करते रहते थे; किन्तु अब शिक्षित लोगों को आत्मावलम्बन का सुलक्षण दीखने लगा [illegible] आत्म मर्यादा की ओर उनका मन झुका है। हम लोगों को च[illegible] कि, अपने मस्तिष्क और हाथ दोनों से काम लें और दृढ़ता [illegible] स्वावलम्बन से अपने उद्देशों को पूरा करने में कोई बात उ[illegible] रक्खें। वाग्वीर न रह कर हमेशा कर्मशूर होना चाहिये। अपने देश के कल्याण के लिये जो कुछ कष्ट उठाने पड़ें उ[illegible] सहने के लिये तैयार रहना चाहिये।

सफलता कैसे प्राप्त हो ?

संसार के प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा होती है कि, मैं [illegible] धन कमाऊं, मेरा मान [illegible] मेरी विद्या [illegible] [illegible] घर घर हो, सब मनुष्य मेरे कामों से प्रसन्न हों, [illegible] पूर्वक रहूँ। [illegible] ऐसा कहते कहते ही व काल के [illegible] में चले जाते हैं और कुछ भी नहीं कर पाते हैं। हजार में एक [illegible] भी यह इच्छा पूर्ण नहीं होती। [illegible] ही से [illegible] [illegible] है। [illegible] कभी नहीं पाते हैं। [illegible]

गया है ? कारण यह है कि, धन और पद के हेतु सारे संसार में संग्राम शुरू हो रहा है। राजा से रंक तक, गुरु से बालक तक, प्रभु से सेवक तक, सभी धन के इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ रहे हैं। कोई गिरता है, कोई गिरता है, कोई चलता है, कोई लुढ़कता है, कोई हँसता है और कोई सिसकता है। कहीं मान भंग से कहीं प्राण जाय। कहीं मेल जोड़ को कहीं तोड़ जाय। कहीं हाय हाय, कहीं वाह वाह। कोई विपत्ति में दबा जा रहा है, कोई घमंड से फूला फूला हो रहा है। इस प्रकार के घोर अन्याय और दौड़ धूप का [illegible] हो रहे हैं। कहीं किसी के लिए, [illegible] कोई किसी से ऊँचा हो युद्ध कर रहा है। [illegible]

समय का विचार अपने हृदय में २४ घंटे रखो। एक पल भी निष्फल व्यर्थ न जाने दो। समय ही मनुष्य का जीवन है। व्यर्थ समय खोना मानो अपने जीवन को व्यर्थ करना है जो बड़ा पाप है। यश का द्वार खुला हुआ है। इसके जो इच्छुक हों वे कर्त्तव्य पूरा करें, प्यार करें। लोभ ही से मनुष्य कर्त्तव्य के पथ से च्युत होता है। इससे लोभ को दूर भगाने में भरपूर शूरता दिखाओ।

व्यवहार में प्रेम और सभ्यता का बर्ताव करो। प्रेम और मधुर वचन ही वशीकरण मंत्र है। इससे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। झगड़ा करने से मनुष्य सर्वदा दुःखी रहता है। घमंड से हीन पतन होता है। क्रोध से बल व बुद्धि नाश होती है। इससे इन्हें तज दो। विनय अर्थात् नम्रता वह वस्तु है जिससे कठोर हृदय भी सहज मृदु हो जाते हैं। इससे नम्रता और सुशीलता आदि गुणों को ग्रहण करो। दूसरे की बढ़ती देखकर जलने से ईश्वर उस पर जलता है। इससे ऐसा न करो।

एक सदाचार ही इस असार संसार में सार है। इसका सब प्रकार से सत्कार करो। झूठी निन्दा से बचे रहो। जो बात स्वीकार कर लो उसे दृढ़ता से करो। उसे मरण पर्यन्त न छोड़ो। सुख हो या दुःख हो, इससे मुख न मोड़ो। तुम्हारा सिद्धान्त यह हो कि, "कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं।" अवश्य स्वास्थ्य-रक्षक नियमों का पालन ध्यान पूर्वक करो। क्योंकि "धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल कारणम्।"

सत्यवादी बनो। सत्यवक्ता ही धन्य है। इससे आत्म बल बढ़ता है। सत्यवादी का हृदय उच्च, प्रेम, निर्भय, एवं अलौकिक शक्ति सहित रहता है। दुराचार अन्धकार की खान है। इसको सदा विसर्जन किये

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मगध

[illegible]

जिस उद्देश के लिये हमारा जीवन है, उसके साथ युक्त करने में हमारी आयु अल्पमात्र जाती जाती है। अतएव जीवन का सदुपयोग करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है जो मनुष्य "जीवन का एक दिन वृथा गया" कहकर पश्चात्ताप करता है वह धन्य है। जीवन के कितने ही दिन हम लोगों के बिना जाने ही चले जाते हैं। उस पर अभी तक दृष्टि नहीं है। यह तो पश्चात्ताप का विषय है। प्रातःकाल के पश्चात् मध्याह्न, मध्याह्न के पश्चात् अपराह्न, इस प्रकार का दिन रात्रि का आवागमन हुआ करता है। जो मनुष्य जीवन के साधन में तत्पर है उसी से समय का यथार्थ व्यवहार हो सकता है। दिन आता है, रात्रि आती है, एक के पश्चात् दूसरे का उदय है। इसी प्रकार संसार के कार्य का विस्तार हुआ करता है। क्षणभंगुर जीवन की ओर देखने से जाना जाता है कि, हर एक घड़ी ही हम लोगों के कल्याण साधन की लिये लिए हुई है। परोपकार, सदाचार आदि के साधन से यह जीवन सार्थक हो सकता है। जो मनुष्य अमूल्य समय गौरव को समझ कर कालक्षेप में उतरता है, जिसकी एक एक समय पर दृष्टि है वही समय के ही महिमा जानने में समर्थ है। समय के यथार्थ उपयोग बिना अन्त में पश्चात्ताप की अग्नि में जलना पड़ता है। इसलिये जो मनुष्य आलस्य का दास होकर समय व्यतीत करता है, बीते हुए समय की बातें उसके हृदय में आने से उसका अन्तरात्मा प्रज्वलित होता है। वर्तमान समय के निकल जाने पर फिर कार्य की सिद्धि सम्भव नहीं है। भविष्यत् समय किसी के अधीन भी नहीं है। भूत भी [illegible] निकल गया है उसके भी लौटने की कोई सम्भावना नहीं। इसी लिये वर्तमान समय का उत्तम व्यवहार करना है।

समय के सदुपयोग से जीवन के उद्देश की सिद्धि है । अतएव अमूल्य समय के महत्त्व को समझ कर काम करने से अत्यन्त सुख प्राप्त हो सकता है । दुर्लभ मनुष्य-जन्म ग्रहण करके, धर्मोचित काम न करके, यदि भोग विलास आदि बुरी बातों में दिन व्यतीत किये जांय, तो यह देह भार मात्र है । अनित्य संसार में हमारी स्थिति थोड़े दिन के लिये है । तो भी यदि हम अपना जीवन व्यर्थ बातों के दिखावे और अनुचित कामों में लगाना चाहें, तो हमारे संसार सुख का आधार तो रहता है । किन्तु हम इस विषय में ऐसे उदासीन हो गये हैं कि, अनन्त आनन्द को एक बार ही भूल कर और सदा समय की अवहेलना करके [illegible] रहे हैं । जिस दिन अचानक ही मनुष्य-लीला समाप्त होगी, [illegible]

आज्ञा का पालन करने वाला कहलाने का गौरव प्राप्त [illegible] चाहते हैं तो हमें समय का सदुपयोग करना चाहिये।

सुनीति-तत्त्व-शिक्षा

जैसे प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चलने से, [illegible] आदि से अन्न-वायु-कृत अनेक शारीरिक रोग पैदा होते हैं, [illegible] तक शरीर को क्लेश पहुँचाते हैं, वैसे ही सुनीति-तत्त्व-[illegible] नियमों के (जिसे अँगरेज़ी में "मारल ला" कहते हैं) [illegible] रोग होते हैं। पर ये रोग उस तरह के नहीं हैं जो शरीर को [illegible] या बाहिरी निशानों से उनकी पहिचान की जा सके। देर तक [illegible] में बैठे रहिये, प्रकृति के नियम आपको न छोड़ेंगे। कितनों को ख़्वाहिश रहता है कि, बुढ़ापे तक जवानी की ताकत न घटे, इसलिये वे तरह तरह के कुश्ते, भाँति भाँति के रस एवं पौष्टिक औषधियाँ सेवन करते हैं, खूबसूरती बढ़ाने को [illegible] लगाते हैं, [illegible] आइल काम में लाते हैं, [illegible] तरह तरह के इत्र मला करते हैं, जिसमें सौन्दर्य और रौनक़ में कहीं से किसी तरह की त्रुटि न होने पावे। किन्तु इसका कहीं ज़िक्र भी न सुना कि, सुनीति-तत्त्व-सम्बन्धी सौन्दर्य, सुनीति के नियमों पर चलने का फल क्या है? उसको कैसे पालने से लाभ या उसे कैसे बढ़ावें? जैसा सौन्दर्य और शारीरिक बल बढ़ाने की फ़िक्र में लोग व्यस्त रहते हैं, वैसे यह कहीं सुनने में न आया कि, इन [illegible] डाह, मत्सर, निठुरता, जाल, कपट, बेईमानी, आलस्य, इन दुर्गुणों [illegible] किस अवस्था में हैं? जितने अब हैं उनमें से कुछ कमी हो सकती है या नहीं और कितने दिनों के परिश्रम से किस कदर कमी हो सकती है? हम समझते हैं, जिस बात पर हम अपने पढ़ने वालों का ध्यान लाना चाहते हैं, उसमें से पहले ही कोई [illegible]

बुद्धिमान् धनी मानी या प्रभुता वाले होंगे जिनको अपने "मारल्स" यानी सुनीति-तत्त्व के सुधारने और बढ़ाने की कभी कुछ चिन्ता हुई हो। सच तो यों है कि, वास्तविक सुख इस पर ख्याल किये बिना हो ही नहीं सकता। हमारे "मारल्स" बिगड़ रहे हैं और उस दशा में वास्तविक सुख की आशा रखने ही असम्भव है, जैसे बालू से तेल का निकालना असम्भव है। वैभव, प्रभुता या संसार की वे बातें जो इज्ज़त और महत्ता बढ़ाने वाली मान ली गयी हैं जिनके लिये हड्डी के एक टुकड़े के वास्ते कुत्ते की भाँति हम ललचा रहे हैं, वे सब उनके सामने अति तुच्छ हैं जो अपने "मारल्स" का बढ़ा पक्का है। जो आनन्द इसमें मिलता है वह उस सुख के समान नहीं है। क्षुद्र विषय वासना के सुख हौसिला रखने वाले की पहुँच के भीतर है; पर सुनीति-तत्त्व सम्बन्धी अलौकिक सुख उनकी पहुँच के बाहर है। लाखों इस सुख के शिखर तक चढ़ने का हौसिला करते हैं पर कोई एक ही दो इसकी चोटी तक पहुँचते हैं। सुनीति-तत्त्व के सिद्धान्तों पर लक्ष्य किये और प्रतिदिन अपने दैनिक जीवन में इनका पालन करते हुए बुद्धि के प्रकाश से प्रेरित हो, मनुष्य इस आनन्द का अनुभव कर सकता है, पर इस लोहे के चनों का चबाना सर्वसाधारण के लिये सहज नहीं है। इसके अधिकारी वे ही हो सकते हैं जिनके इनकी ओर दृष्टि ही सहज है; जिनकी आभ्यान्तरिक शान्ति की दशा के सामने बड़ी बड़ी बादशाहतों का भी मूल्य कम है। अपने सिद्धान्तों में बड़े पक्के एक मनुष्य से एक बार किसीने पूछा—"साहब, आपके मुल्क में औरंगज़ेबों का क्या महत्व है?" उत्तर दिया, "कुछ नहीं"। आप लोग विषय-वासना-जन्य ही दुनियावी सुख को सुखों के पीछे दौड़ रहे हो। मैं इसीको अपना मुकाम किये हुए हूँ; सब यह दुनिया ही व्यर्थ है कि, उसके अपनी आत्मा (कॉन्शन्स) का बड़ा सहारा है।

सुकरात, अफलातून, अरस्तू तथा अक्षपाद, कणाद, सरीखे दार्शनिक बुद्धिमानों के पास जो रत्न था और धनानन्द का अनुभव उन्हें था, वह उसे कहां जो धन तथा सांसारिक विषय वासना की ज़हरीली चिन्ता में रहता है* ।

सामुद्रिक कौतुक

पृथ्वी का ¾ भाग समुद्र है । ३,५०० फीट की नीचाई में का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु गर्मी सर्दी के प्रभाव में थोड़ा पड़ता है । ध्रुव के पास वाले बर्फिस्तान से और विषुवत् रेखा आस पास गर्म मुल्कों से थोड़ा ही अन्तर पड़ता है । जल के मील के नीचे प्रत्येक इञ्च की दूरी में एक टन से अधिक अन बोझ होता है । यदि ६—७ फीट गहरे सन्दूक में समुद्र का भर दिया जाय और उसे सूर्य की गर्मी से भाफ बनने दिया जा तो उसके पेंदे में २ इञ्च नमक बैठ जायगा । यदि समुद्र गहराई औसत से ३ मील मान ली जाय, तो उसमें नमक की २३० फीट अटलांटिक समुद्र में माननी पड़ेगी ।

समुद्र का जल धरातल की अपेक्षा पेंदे में ठंडा होता है । देश की सामुद्रिक घाटियों से पेंदे का पानी धरातल की पहिले जम जाता है ।

लहरें बड़ी धोखा देती हैं । तूफान के समय उन्हें देखने जान पड़ेगा कि, पानी चलता है । पानी वास्तव में ठहरा रहता किन्तु उसके नीचे का भाग चलता है । कभी कभी तूफान के स लहरें ४० फीट ऊंची उठती हैं और ५० मील प्रत्येक घंटे के हि

* प० बालकृष्ण भट्ट लिखित ।

। चलती हैं। एक घाटी से दूसरी घाटी की ऊँचाई में १९ फ़ीट का अन्तर होता है; अतएव ५ फ़ीट ऊँची लहरें ७५ फ़ीट जल के ऊपर फैलेंगी। उन लहरों का बल जो बेलराक नामक चट्टान पर ज़ोर मारता है, उनका ज़ोर फी वर्गगज़ १७ टन होता है।

समुद्र से पानी खींचने में उसका भाफ बनकर उड़ना एक अद्भुत शक्ति रखता है। समुद्र से भाफ १४ फ़ीट मोटा बादल बन कर प्रति वर्ष आकाश में उड़ जाता है। वायु उसे उड़ा ले जाकर किसी जगह पानी बरसाता है और वह पानी फिर लौटकर नदियों के द्वारा समुद्र में जाता है।

समुद्र का गहराव एक अद्भुत प्रश्न उपस्थित करता है। यदि अटलांटिक समुद्र ६,५५४ फ़ीट नीचा कर दिया जावे तो उसके एक किनारे का अन्तर दूसरे से उसका आधा अर्थात् १,५०० मील होगा। यदि और थोड़ा नीचा कर दिया जावे, अर्थात् १९,६८६ फ़ीट, तो न्यूफ़ाउंडलैंड और आयरलैंड के मध्य एक सूखा रास्ता पड़ जायगा। यह वही स्थान है जिस पर बड़ा अटलांटिक तार लगाया गया है।

सुख क्या है ?

सुख के सम्बन्ध में आधुनिक वेदान्तियों का तो सिद्धान्त ही निराला है। स्वामी-पूज्य प्राचीन वेदान्त-दर्शन के उत्तम सिद्धान्तों को—अर्थात् सुख दुःख में एक सा रहना, सुख में फूल न उठना, दुःख में घबड़ाना नहीं, आदि बातों को न मान कर—ऐसे नास्तिक वेदान्ती कह दे सकते हैं कि, सुख दुःख पाप पुण्य बुरा भला दोनों एक हैं और दोनों झूठे बन्धन हैं, पाप पुण्य दोनों शरीर करता है, आत्मा शुद्ध और निर्लेप है, इत्यादि। ऐसे वेदान्तियों के वे कच्चे

सिद्धान्तों को अलग रख हम यहाँ पर आज विचार किया है कि, सुख क्या है? लोग कहते हैं कि, इस पर भगवान् की है। ये बड़े सुखी हैं। पर इसका कोई ठीक निश्चय अब हुआ कि, सुख क्या वस्तु है जिसके लिये संसार भर है। कोई बड़ा परिवार और बढ़े हुए कुनबे को सुख की मानते हैं। कहते बच्चे लड़के वालों से घर भरा हो। रोता है, दूसरा उधर पड़ा हुआ चिल्ला रहा है, सब ओर गुलशोर मच रहा है। एक बाप की दाढ़ी खसोटता है, कान मींजता है। तीसरा गोद में चढ़ा बैठा है। चौथा मचल रहा है। बाबा बेवकूफ मत हो मत मुँहरा से मान जाते हैं और अपने बराबर भाग्यवान और धनी किसी मानते। कोई कोई इसी को बड़ा सुख मानते हैं कि, रुपया पास हो। उलट पलट बार बार उसे गिना करें। न खावें खरचें। सोते बस बैठे बैठे उसे ताकते रहें। अरे हो पैसे अन् मुरदनी रहे। मान जाय, पत जाय, लोक में निन्दा हो, कोई किन् हो भला बुरा कहे, पर गाँठ का पैसा न जाय। तुम उनके रुपैये द खजाने में भले भले ही न हो, चाहे तुम्हारा सा बदकार कलन्क मर्यादित दूसरा दुनिया के पर्दे पर न पैदा हुआ हो, तुम उन में सिर की कलँगी होगे। यही आज संसार के समस्त गुणों में अग्रगण्य हो, अपने सुयश की महक से महक महक करते गुण और सद्गुण की क्यारियों से लगे हुए हो। पर रुपये अंटी से उस समय के दावे में आप भी अपना उचित हक मान हरगिज़ अस्वीकृत हूँ, वह आपका मानापमान और बुरा दूसरा जिलाद् में न जैगा। उसके सामने आपका मान किसी की पर या जन्म से यह गालियों से मनुष्य मात्र का पाठ आरम्भ होगा, न किसी अत्याचारी के ... आप किसके ... में ... हो

. जो तुम्हें मज़बूत समझ तुम्हारी कदर करते हैं, उनके लिये भी उसी नाम का सहस्र पाठ तैयार है। किसी की समझ में हुकूमत बड़ा सुख है। अपनी हुकूमत के ज़ोर से ग़रीब दुखियाओं को पीस उनका लहू सुखा सुखा न्याय हो, चाहे अन्याय, अपना सुख और अपने फ़ायदे में ज़रा भी फ़र्क न पड़े, इत्यादि—इन कमबख़्त के लिये सब सुख है। किसी किसी का मत है कि, शरीर का निरोग रहना सुख सन्देह का उद्गार है। इसी मूल पर यह कहावत चल पड़ी है "एक तन्दुरुस्ती हज़ार न्यामत।" ये सब सुख ऐसे हैं जो देर तक रह सकते हैं और जिनके लिये हम हज़ार हज़ार तदबीरें और फ़िक्र किया करते हैं, फिर भी ये सब तभी होते हैं जब दुर्दैव की कोई खराबी न आई हो। तब तक अपने किये कुछ नहीं होता जब तक उस पर मालिक की मंज़ूर न हो। अब कुछ थोड़े से छुद्र सुखों को यहाँ पर गिनाते हैं; और उन सुखों के भोक्ता जिस प्रकार के होते हैं उन्हें भी उन्हीं के साथ बताते चलेंगे। जैसा, शहर के बदमाश और शोहदों को सुख अमन तथा यहाँ हाकिमों के हाने में है। बनियों को दुर्भिक्ष पड़ने सुख है। हज़ारों का सूद चुकाये हुए हैं; जिन्हें पैसों दुगुने तिगुने पर दिन आया कि अब ... है नहीं मिलता। सेठ जी साहब की गड्डी भर की छाती है। जुआरी का सर्वस्व ... हारे देते हैं। राजाओं को सुख मौत का अन्धा ... का दूर निकल जाने में है। अन्न-वर्णन को सुख नहाने और दान करने में है। सन्तोषियों को दूसरे के नुक़सान में है। सच है, "भिन्नरुचिर्हि लोकः!" कभी कभी हमें सुख के भाव को लोगों पर प्रगट होने से रोकना पड़ता है। हमारा एक पड़ोसी मैजिस्ट्रेट मर गया। जी में तो हमको सुख हुआ मानो गड़े का ख़ज़ाना हाथ लगा; पर लोकलाज मरने के मारे आँसुओं के बीच अपने सुख के भाव को छिपाने को रुलाई हुए के साथ

नहीं है। हमारा देश सदैव सर्वश्रेष्ठ रहा है। भारत संसार भर
सर्वोत्तम समझा जाता रहा है। विदेशी लोग भारत में पहुँचने
को अपना अहोभाग्य समझते थे और कहते थे कि, यदि संसार
स्वर्ग है तो भारत।

वह क्या बात थी जिससे धात्री पन्ना ने उसका प्यारा इ
सा पुत्र सदैव के लिये अलग करवा दिया? वह क्या बात
जिसने श्री शिवाजी महाराज को इतना लोक प्रसिद्ध कर दिया
वह क्या बात थी जिसके कारण देशभक्त मेज़िनी और गैरिब
महान कष्ट को भी तुच्छ समझने लगे? केवल देश भ
इतिहास पर दृष्टि डालिये तो आपको स्पष्ट विदित होगा
देश-भक्ति ही एक वस्तु है जिसके अवलम्ब पर स्वतन्त्रता
पताका फहराती है, जहाँ देशभक्ति है वहाँ विजय हाथ बाँ
खड़ी रहती है। क्या रूसी जापानियों से थोड़े थे जो हार ग
संख्या में जापानी अति न्यून थे। केवल भेद था तो यह
जापान का प्रत्येक मनुष्य देशभक्त था और देश-सेवा ही को
परम कर्त्तव्य समझता था। रूसी केवल वैतनिक सिपाही थे
जीविकावश लड़ने को विवश हुए थे। इसीसे पराजय के क
का टीका उनके माथे पर लगा।

४८० वर्ष ईसा से पहिले जिस समय फारिस के बा
ज़रक्सीज़ (Xerxes) ने यूनान पर धावा किया, उस समय यू
वालों को चिन्ता हुई कि, देखें ईश्वर क्या करता है। उस
फ़ारिस का राज्य बहुत विस्तृत था। कहते हैं कि, यूनान फ़ारि
एक सूबे के बराबर कठिनता से था। फ़ारिस वाले यूनानी म
को पराजित ही नहीं करना चाहते थे, वरन् उनके धर्म के नाश
का भी पूरा इरादा कर लिया था क्योंकि फ़ारिस वाले अग्नि

ो और यूनानी मूर्त्तिपूजा से घृणा करते थे। इसीलिये उन्होंने
त्येक देवालय को जो रास्ते में मिला, लूटा और भ्रष्ट किया।
फ़ारिस वालों की यह सेना बीस लाख थी जिसे बादशाह ने यूनान
र आक्रमण करने के लिये सारडिस (Sardis) में जमा किया था।
अब यूनानियों ने कारिन्थ डमरूमध्य पर इस विचार के लिये
एक सभा की कि, उनको अपने देश को कैसे बचाना उचित है।
उन्होंने थरमापली (Thermopylæ) को बचाने का इरादा किया।
चार सहस्र मनुष्य ल्योनीडास (Leonidas) के साथ गये जिनमें
३०० स्पार्टा के थे। ल्योनीडास स्पार्टा का हाल ही में बादशाह
हुआ था। स्पार्टा यूनान का एक प्रान्त था, जहाँ के मनुष्य कट्टर
सिपाही होते थे और मरने से नहीं डरते थे।

ल्योनीडास इन सिपाहियों को साथ लेकर और अपने देश के
लिये प्राण देने का दृढ़ सङ्कल्प करके अपने राजप्रासाद से निकला।
३०० सिपाहियों ने अपनी अन्तिम क्रियाएँ कीं। यूनान में यह
रीति थी कि, जब वीर योद्धाओं को युद्ध से जीवित लौटकर आने
की कोई आशा नहीं होती थी तब वे ऐसा करते थे। यूनानी स्त्रियों
ने भी सहर्ष युद्ध में पुरुषार्थ दिखाने का अनुरोध करके अपने
पतियों को लड़ाई के लिये विदा किया। स्पार्टा की स्त्रियाँ भी बड़ी
वीर हुआ करती थीं। वे कहा करती थीं कि, घर में लड़ाई में ढाल
लिये हुए आना अथवा उसके ऊपर आना; अर्थात् या तो शत्रुओं
को जीत कर आना अथवा मर कर आना। जब ल्योनीडास
थरमापली पर आया, तब उसने फ़ोसियावालों को ऐटा के पहाड़ के
रास्ते को बचाने को भेजा। अब फारिसवालों की सेना हेलेसपॉण्ट
(Hellespont) को पार करके थरमापली के निकट आगई और दो
दिन तक उसके भीतर घुसने का व्यर्थ यत्न करती रही। परन्तु यह
इतना ही असाध्य काम था जितना पहाड़ों में रास्ता बनाना। पर

हाय लालच तेरा बुरा हो ! तू क्या क्या नहीं करा देता! बहुतेरे देशों का सत्यानाश कर दिया। इसी लोभ के इफ़िआल्टीज़ (Ephialtes) फारिस वालों के डेरे में आया उसने बहुत सा द्रव्य लेकर स्पार्टा वालों के पास पहुँचने बता दिया, जिससे वे स्पार्टा वालों के पीछे आकर आक्रमण सकें। हाईडरनीज़ (Hydernes) के साथ फारिस वालों सेना भेजी गई। लेओनीडास और उसके सिपाहियों ने लड़ते मर कर प्राण देने का प्रण किया। सब के सब फारिस अधीन हो गये। परन्तु ८० मनुष्य माईकेन (Mykenæ) के, थीस्पिया के, ४०० थेसपिया के और ३०० स्पार्टा के—अर्थात् १,४८० मनुष्य लेओनीडास के साथ फारिस वालों के २० ला सिपाहियों के साथ लड़ने को बचे। लेओनीडास के डेरे में दो जो कुटुम्बी थे, उनको उसने बचाना चाहा कि, किसी प्रकार वे (स्पार्टा) को लौट जायँ और चिट्ठी देकर उन्हें स्पार्टा को भेज चाहा। परन्तु एक ने उत्तर दिया—"मैं लड़ने को आया हूँ, प ले जाने के लिये नहीं आया हूँ।" दूसरे ने कहा—"हमको पत्र जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे कार्य ही बता दें जो कुछ कि, स्पार्टा जानना चाहता है।" जब एक मनुष्य डाइनेसिलिस से जो एक स्पार्टावाला था, कहा कि, शत्रुसेना में चलाने वाले इतने अधिक हैं कि, उनके धनुषों और तीरों से धुँधला हो गया है, तब इस पर डाइनेसिलिस ने उत्तर दि "यह अच्छा है, हम छाये में लड़ेंगे।" इन १,४०० मनुष्यों ने लाख सेना का सामना किया और फारिस वालों को मारते हु आगे बढ़ते चले गये। परन्तु ऐसा वे कब तक कर सकते थे ? देवताओं का मनसा तो पहिले ही से बता दिया गया था। लेओनीड सबसे पहिले मारा गया। उसके शव के आस पास घोर यु

था। फारिस के बादशाह के भ्राता मारे गये। स्पार्टा और थेसपिया वाले पहाड़ी पर चढ़ गये और उन्होंने वहाँ ही से युद्ध करने का विचार किया; परन्तु थीबा के लोग न ठहर सके और उन्होंने फारिस वालों से शरण माँगी और पराधीनता स्वीकार की। उनके शरीर पर एक शाही निशान गर्म लोहे से लगाया गया ताकि साथ छोड़ने वाले समझे जावें। अब उन थेसपिया और स्पार्टा वालों का यह वृत्तान्त है कि, वे उसी पहाड़ी पर अन्तिम समय तक लड़ते रहे, यहाँ तक कि, सन्ध्या तक उनमें कोई शेष न रहा। इस प्रकार सब सिपाहियों का और ल्योनीडास का अन्त हुआ। इन थोड़े भर देशभक्त योद्धाओं ने बीस हज़ार फारिस वालों का संहार किया। ज़रक्सीज़ ने डेमेरेटिस से पूछा कि, क्या स्पार्टा में कुछ और भी आदमी ऐसे हैं? उसने उत्तर दिया कि, ८,००० और हैं। एरस्टाडमस (Erustadmus) से, जो स्पार्टा वाला था, और केवल कारणवश लड़ न सका था, सब आदमी घृणा करते थे और उसको कायर कहते थे। अब उसको कोई आग या पानी (Fire or water) नहीं देता था। उसने इस अपवाद का बदला एक वर्ष के (४७९ वर्ष ईसा से पहिले) पल्टी की लड़ाई में सबसे पहिले मर कर दिया। इस लड़ाई से फारिस वाले यूनान से सदा के लिये निकल गये थे। ल्योनीडास के स्मारक चिन्ह बनाये गये थे परन्तु अब उनमें से एक भी शेष नहीं है, परन्तु ल्योनीडास का नाम अब तक विद्यमान है।

महाशयो! यह देशभक्ति ही थी जिसके कारण स्पार्टा के लोग इतने मनुष्यों को मार कर इस प्रकार अपने नाम अमर कर गये। देशभक्ति ही के कारण हम लोग ल्योनीडास की आज तक प्रशंसा करते हैं। हमारे भारतवर्ष में भी कितने ही ल्योनीडास हो गये हैं और कितने ही स्थान पर थरमापली

चन चुके हैं। वीर-प्रशंसक कर्नल टाड ने अपने इतिहास राजस्थान में लिखा है—

"There is not a petty state in Rajasthan, that has not had its Thermopylæ and scarcely a city that has not produced its Leonidas."

अर्थात् राजपूताने में कोई छोटी से छोटी भी रियासत ऐसी नहीं है, जहाँ एक न एक थरमापली न हुआ हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर मिले जिसमें लियोनिडास उत्पन्न न हुआ हो।

---

*मातापिता को किस बात से अधिक हर्ष प्राप्त हो ?

मातापिता के लिये इससे अधिक प्रसन्नता की और कोई बात नहीं है कि, उनकी सन्तान योग्य हो। निस्सन्देह वे माता पिता बड़े सौभाग्यवान् हैं जिनके सुयोग्य, सदाचारी और आज्ञापालक पुत्र हैं और जिनके गुणहीन, दुराचारी अयोग्य और अशिक्षित पुत्र हैं उनकी बराबर संसार में कोई अभागा नहीं और न विचारवान् पुरुष को इसकी बराबर संसार में और कोई दुःख है। अयोग्य सन्तान काँटे की तरह मा बाप के हृदय में सदा दुःख पहुँचाया करती है। अयोग्य से अयोग्य पुरुष होगा वह भी यही चाहता है कि, मेरी सन्तान योग्य हो, तो फिर अच्छे आदमी के बुरी सन्तान का होना कितने दुःख की बात है। हमारे नीति ग्रन्थों में तो यहाँ तक लिखा है कि, विद्याहीन और निर्गुण सन्तान के होने से

उसकी माता का [illegible] [illegible] का उसका [illegible] होकर मरना ही [illegible] है। इससे [illegible] [illegible] होता है, परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible] पहुँचता रहता है। [illegible] [illegible] में हमारे [illegible] से [illegible] ही [illegible] की [illegible] [illegible] प्राप्त होता कि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] और [illegible] है, फिर [illegible] [illegible] कैसे [illegible] हो सकती है? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

प्रार्थना करें कि, आप अपने राज्य को ग्रहण करें। आज तो देखा जाता है कि, थोड़ी सी जायदाद के लिये भाई भाई का शत्रु हो जाता है और उसके प्रति करने अनकरने सभी काम करने को उद्यत हो जाता है। जो बात आपस ही में ते हो सकती है, उसके लिये अदालत में मुकद्दमा दायर करके अपना समय और धन बिगाड़ते हैं और अपने भाइयों का बिगड़वाते हैं और दूसरों की दृष्टि में तुच्छ जँचते हैं। क्या यह क्षत्रिय वंशजों के योग्य कार्य है? सब से अधिक निन्दनीय बात हम इसमें यह देखते हैं कि, यदि पास अच्छी ज़मींदारी या रियासत है, तो अवश्य ही वे या दुराचार में लिप्त रहते हैं और प्रथम तो इनका चित्त ऐसी ऐसी बातों की ओर चलायमान रहता है। दूसरे किसी अनुभवहीन नवयुवक का कोई मालदार की स्त्री से अनुचित सम्बन्ध हो जाने पर वह रात दिन मद्यपान में मग्न रहता है। रोगों का ऐसे कष्टों में शिकार पाना बिना ज्ञान के असम्भव है और जब तक विद्या नहीं, विवेक नहीं, अनुभव नहीं, तब तक ऐसा सम्भव है कि, कोई सदाचारी रहे? एक नीतिकार ने कहा है—"धन, यौवन, प्रभुता और अविवेक, इनमें से एक एक ही मनुष्य को नष्ट कर देने के लिये पर्याप्त है, फिर जहाँ ये चारों विद्यमान हैं वहाँ का फिर कहना ही क्या है?"

कहने का तात्पर्य यह है कि, नवयुवकों की प्रवृत्ति दुर्व्यसनों की ओर स्वभावतः झुकती है, पर जो विचारों के उपासक और विवेक के नित हैं, वे ही दुर्व्यसनों से बच सकते हैं। दुर्व्यसनों से बचे बिना, कोई भी नवयुवक सदाचारी, सद्गुणी एवम् विनय-सम्पन्न नहीं हो सकता और जब तक सन्तान मातृपितृ-भक्त, सदाचारी एवम् सद्गुण-सम्पन्न न हो, तब तक मातापिता को प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। जिनकी सन्तान सदाचारी, मातृपितृ भक्त

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

काम है कि, अपने निज के कामों में मन लगावे और उनको पूरा करने में अपनी दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और विद्या को काम में लावे। अङ्गरेज़ों की एक कहावत है कि, "यदि तुम पैन्सों की उचित रक्षा करोगे तो शिलिङ्ग अपने आप तुम्हारे पास रहने की फ़िक्र कर लेंगे।" अपनी आमदनी में से मनुष्य को आधा, तीसरा या चौथाई रुपया बचाना चाहिये। मनुष्य को छोटे छोटे ख़र्चों पर भी ध्यान रखना चाहिये और प्रत्येक विषय में यथोचित ख़र्च करना उचित है। ख़र्च करने के समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि तुम्हारे ज़रूरी और उचित ख़र्चों में कमी न हो। पेट काट कर रुपया इकट्ठा करना और कंजूस मक्खीचूस कहाना भी ठीक नहीं है।

बिना मितव्ययी बने न कोई पुण्यदान कर सकता है और न कोई ऊँचा बावड़ी खुदवा सकता है। न कोई उदारता और सहृदयता का सच्चा परिचय दे सकता है। न अपने दुर्भिक्ष पीड़ित भाइयों की रक्षा का उपाय कर सकता है। सभा सोसाइटी, व्याह शादी आदि सब काम मितव्ययिता ही से चलते हैं। जो फ़ुज़ूलख़र्च होते हैं पहिले तो ख़ूब मौज उड़ाते हैं, अन्त में थोड़े दिनों पीछे ऐसी दुर्दशा में गिर जाते हैं और छोटी छोटी नौकरी करते या भीख माँगते फिरते हैं। जितने बड़े बड़े विद्यालय, कारख़ाने, पुस्तकालय, अनाथालय आप देखते हैं, ये सब मितव्ययी सज्जनों ही के बनवाये हुए हैं।

बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य भी बिना मितव्ययी बने, अपने कुटुम्ब वालों को नहीं पाल सकता, न उनको शिक्षा देकर योग्य ही बना सकता है। मतलब दुनिया के सब काम धर्म की रक्षा के साथ पैसे ही से चलते हैं।

फ़ुज़ूलख़र्च बहुधा वे ही देखे जाते हैं, जिन्हें उचित शिक्षा नहीं मिलती है। वे ही बुरे कामों में फँस कर फ़ुज़ूलख़र्ची करते

अपने को कंगाल बनाते हैं। यूरोप के देशों में इस विषय की विशेष शिक्षा दी जाती है। इस फ़ुज़ूलख़र्ची ने सैकड़ों घरों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इससे अपने बालकों को शिक्षा दीक्षा के साथ साथ इस आवश्यक विषय की शिक्षा भी देनी चाहिये। रुपया पैसा जो उनके हाथ से ख़र्च कराया जावे, उसमें ही उन्हें मितव्ययिता का पाठ सिखाया जावे। बचपन की शिक्षा और टेवें बड़ी अवस्था में अपना बड़ा प्रभाव दिखाती हैं। इससे अपने छोटे छोटे बच्चों को अपने छोटे ख़ज़ाने का मालिक बनाकर उन्हें मितव्ययी बनने की शिक्षा देनी चाहिये।

यूरोप में घर के काम काज चलाने का सब ख़र्च स्त्रियों के द्वारा कराया जाता है। वे अपनी गृहस्थी के ख़र्च को अच्छी तरह चला कर, मितव्ययी होने के कारण अपने घर को आनन्दमय बना देती हैं। उन्हें शिक्षा देते समय ये सब बातें ख़ूब सिखलाई जाती हैं। हिन्दुस्तानियों को अपनी स्त्रियों का इस विषय में कुछ भी भरोसा नहीं है। प्रथम तो हमारी स्त्रियां ही शिक्षित कही जाने की योग्यता में न्यून हैं, दूसरे उन्हें इस विषय की शिक्षा भी नहीं दी जाती है। हमारे घरों का बहुत सा आनन्द इस कारण भी नष्ट हो गया है कि हमारी स्त्रियां रुपये पैसे का ख़र्च करना नहीं जानतीं। मनुष्यों का बहुत सा समय इन झंझटों में भी ख़र्च होता है। माता की गोद बच्चे की सच्ची पाठशाला है। इस समय बच्चा बहुत कुछ माता से सीखता है। यदि माता मितव्ययी होगी तो बेटा भी ... बन सकता है।

...का कथन है कि, चींटी की तरह परिश्रम और ... मितव्ययिता ही धनाढ्यता है। एक धनाढ्य ... ने एक बार कहा कि, "मेरी सारी धन

प्रार्थना करें कि, आप अपने राज्य को ग्रहण करें। आज जाता है कि, थोड़ी सी जायदाद के लिये भाई भाई का शत्रु जाता है और उसके प्रति करने अनकरने सभी काम उद्यत हो जाता है। जो बात आपस ही में तै हो सकती है, लिये अदालत में मुकद्दमा दायर करके अपना समय और धन बिगाड़ते हैं और अपने भाइयों का बिगड़वाते हैं और दृष्टि में तुच्छ जँचते हैं। क्या यह क्षत्रिय वंशजों के योग्य कार्य है सब से अधिक निन्दनीय बात हम इसमें यह देखते हैं कि, पास अच्छी ज़मींदारी या रियासत है, तो अवश्य ही ... या दुराचार में लिप्त रहते हैं और प्रथम तो इनका चित्त स्वतः ऐसी बातों की ओर चलायमान रहता है। दूसरे किसी ... अनुभवहीन नवयुवक का खोटे चालचलन की स्त्री से ... सम्बन्ध हो जाने पर यह रात दिन नाचगान में मग्न रहता है। ऐसों का ऐसे फंदों से निस्तार पाना बिना ज्ञान के असम्भव है और जब तक विद्या नहीं, विवेक नहीं, अनुभव नहीं, तब सम्भव है कि, कोई सदाचारी रहे? एक नीतिकार ने कहा है "धन, यौवन, प्रभुता और अविवेक, इनमें से एक एक ही को नष्ट कर देने के लिये पर्याप्त है, फिर जहां ये चारों विद्यमान वहां का फिर कहना ही क्या है?"

कहने का तात्पर्य यह है कि, नवयुवकों की ... की ओर स्वभावतः झुकती है, पर जो विद्यार्थी के उपासक और विवेक के मित्र हैं, वे ही दुर्व्यसनों से बच सकते हैं। दुर्व्यसनों से बचे बिना, कोई भी नवयुवक सदाचारी, सद्गुणी एवम् पितृभक्त नहीं हो सकता और जब तक सन्तान मातृपितृ-भक्त, सदाचारी एवम् सद्गुण-सम्पन्न न हो, तब तक मातापिता को प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। जिनकी सन्तान सदाचारी, मातृपितृ-आज्ञाकारी

और सद्गुण-सम्पन्न हैं, उनके लिये यह संसार साक्षात् स्वर्ग है और जिनकी सन्तान अयोग्य, दुराचारी, विवेकशून्य हैं, उनके लिये यह संसार प्रत्यक्ष नरक है, वे जीते हुए भी मरे से गये बीते हैं।

भट्टनारायण और वेणीसंहार-नाटक

विक्रमी संवत् की नवीं शताब्दी में यह कवि पञ्चाल या कान्यकुब्ज देश में पैदा हुए। इनके पिता का नाम भट्ट यज्ञेश्वर था। वेद और षड्दर्शन में भट्टनारायण की एक असाधारण व्युत्पत्ति थी। श्रुति और काव्य-साहित्य [illegible] था। इसी समय गौड़ देश (बंगाल) में महाराज आदिशूर राज्य करते थे। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र, जिन्होंने भारत के पुराने इतिहास का बहुत अच्छी तरह अनुसन्धान किया है, लिखते हैं कि आदिशूर [illegible] के क्षत्रियों के वंश में उत्पन्न था। आरम्भ में इसका नाम धीरसेन था, किन्तु [illegible] था। इसलिये इसका [illegible] नाम आदिशूर हुआ। एक समय आदिशूर को यज्ञ करने की इच्छा हुई। संयोग से [illegible] आदिशूर ने [illegible] के राजा [illegible] को वेद और [illegible] में [illegible] हुआ। [illegible] के लिये लिखा, और [illegible] से [illegible] कन्नौज उस समय [illegible] थी। कन्नौज का दूसरा नाम [illegible] भी था। आदि-शूर की प्रार्थना के, [illegible] ने [illegible] अनेक [illegible] और [illegible] से [illegible] यह [illegible]

साथ साथ मकरन्द घोष आदि पाँच कायस्थ सरदारों को भी अपनी रक्षा के लिये ले गये थे। बङ्गाल के उच्च जाति के कायस्थ इसी मकरन्द और उसके साथियों के वंश से उत्पन्न हैं और इस श्रेणी के तीन राढ़ीय श्रेणी के वहाँ वाले ब्राह्मण सब भट्टनारायण और उनके साथियों के वंश में हैं। इन पाँचों कायस्थों में से एक कालिदास मित्र के गुरु श्रीहर्ष थे। बंगदेशी इन्हीं श्रीहर्ष को नैषध के कर्त्ता कहते हैं। किन्तु ये वेही श्रीहर्ष नहीं हैं। यदि ये वेही श्रीहर्ष होते तो जब मम्मट भट्ट ने "काव्यप्रकाश" में "वेणीसंहार" के बहुत श्लोक उदाहरण में दिये हैं, तब "नैषध" के श्लोक भी वे अवश्य देते। इससे मालूम होता है कि, नैषध वाले श्रीहर्ष भट्टनारायण के समकालीन न थे। इन ५ ब्राह्मणों के आने के पहले वैदिक-आचार विमुख सतशत संख्यक ब्राह्मण सपरिवार वहाँ रहते थे। अब भी बंगाल में सप्तशती ब्राह्मण पाये जाते हैं। पर ये बड़े कुलीन ब्राह्मणों में नहीं समझे जाते। इन पाँचों ब्राह्मणों के यज्ञ करने से आदिशूर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और राढ़ नामक देश में पाँच गाँव वृत्ति में दे उन्हें वहाँ टिका लिया। पाँचों कायस्थों को भी बड़े बड़े पद और जागीरें मिलीं। जो पाँच ब्राह्मण कन्नौज से बङ्गाल में गये, उन्हें उनके कुटुम्बवालों ने सहभोजन में अपने साथ सम्मिलित नहीं किया। तब वे वहाँ से लौट आये और बंगाल ही में विवाह कर गौड़देश के निवासी हो गये। यह सुन उनकी पूर्व विवाहिता पत्नियाँ कन्नौज से वहाँ आयीं। उन्हें आदिशूर ने गौड़देश के पास ही वारेन्द्र प्रदेश में टिका दिया। उनके वंशज वारेन्द्र श्रेणी के कहलाये। इस प्रकार पर राढ़ी और वारेन्द्र दो श्रेणी बङ्गाल के ब्राह्मणों की हुई। उदयनाचार्य ने वारेन्द्र श्रेणी वालों की और देवीवर घटक नामक किसी ने राढ़ीय श्रेणीवालों की और पुरन्दर ने कायस्थों की कुलीनता स्थापित की। तभी से बंगाल के ब्राह्मण और वहाँ

[illegible]राढ़ियों में कुलीनता की प्रथा निकली है। भट्टनारायण वृद्धावस्था में काशी-सेवन के लिये काशी में आ गये और वहाँ बहुत से शिष्यों को विद्या पढ़ा तैयार किया। उन्हीं शिष्यों के अनुरोध से "प्रयोग-रत्न" नाम का धर्म-शास्त्र का बड़ा उत्तम ग्रन्थ रचा जो अबतक प्रचलित है। काव्य-रचना में भट्टनारायण का केवल "वेणीसंहार" देखने में आता है, पर वीररस प्रधान यह नाटक रचना में बड़ा उत्कृष्ट दृश्यकाव्य है। दशरूप नामक ग्रन्थ जिसमें १० प्रकार के दृश्यकाव्यों का विवरण विस्तार के साथ लिखा है और साहित्य-दर्पण में भी जितने उदाहरण "वेणीसंहार" और काश्मीराधिपति श्रीहर्षदेवकृत "रत्नावली" नाटिका के दिये गये हैं, उतने किसी नाटक के नहीं हैं। इससे विदित है कि ये दोनों उक्त नाटक रचना के सम्पूर्ण लक्षण जितने नियम और अङ्ग हैं—सब से पूर्ण हैं। इससे मालूम होता है कि "वेणीसंहार" और "रत्नावली" के कर्त्ताओं ने सम्पूर्ण गुण नाट्यशास्त्र को सामने रख अपने अपने नाटकों को रचा है। यही कारण है कि जितना ये दोनों नाटक नाट्यशास्त्र के उत्तम उदाहरण हैं, उतना दूसरा कोई नहीं है। वीररसप्रधान "वेणीसंहार" के धीरोदात्त नायक युधिष्ठिर मुख्य नायक हैं। भीमसेन अर्जुन आदि उनके सहायक नायक हैं। द्रौपदी मुख्य नायिका है। [illegible] प्रतिनायक है। दुःशासन, शकुनि और कर्ण आदि उसके सहायक हैं। दुर्योधन की स्त्री भानुमती प्रतिनायिका है। [illegible]

कमाल करते हैं। इससे हम बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते वे जिन कार्यों को अपने हाथ में लेते हैं उनके पूर्ण करते परिश्रम और साहस करते हैं। अगम्य पर्वत के अफ़्रिका के महा उष्ण और जलहीन मरुस्थल में जाते हैं मय उत्तर ध्रुव की अगन्तव्य यात्रा करते हैं और संसार को लाभ पहुँचाने का आनन्द प्राप्त करते हैं। वह आनन्द का होता है, जिस दिन अपने परिश्रम का है। श्रम करने के प्रेमी ही संसार में आनन्दी जीव हैं।

श्रम करने से जो जी चुराते हैं, वे चाहे राजा भी हों, वे जीवन में वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। जो में हैं और दुःखी हैं, वे वेही पुरुष हैं जिन्होंने श्रम करने चुराकर अच्छे कर्म नहीं किये। कर्म करने ही से मनुष्य धर्म का पालन कर सकता है। धर्म को जानकर उस पर होने वाले ही धन्य हैं। श्रमहीन मनुष्य कहते हैं—

"सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं।"

अर्जुन ने श्रीकृष्ण द्वारा जब यह समझ लिया कि कर्म मनुष्य का कर्तव्य है, तब ही वे महाभारत में युद्ध करने सन्नद्ध हुए।

कवि लांगफेलो (Longfellow) भी अपनी "साम लाइफ" नामक कविता में यही तत्व निकलता है—

"Act act in the living present,
With heart within and God overhead"

एक नीतिकार कहता है—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

एक महात्मा कहते हैं—"मृत्यु अटल है, फिर उसका आलिङ्गन क्यों न करें ! क्यों न मृत्यु ... हम गान करें ? प्यारी मृत्यु आओ, तुम मुझे ... तैयार पाओगी। जीवन भर सत्कर्म करते करते मुझे उठा ले जा। प्यारी मृत्यु ! तू मेरी सच्ची माता है। अन्त में हमें गोद में लेकर भगवान् के सुपुर्द करेगी।"

यह सर्वस्वीकृत है कि, मनुष्य का जीवन कर्तव्य कार्य ही को है। कर्त्तव्य कर्म करने वालों का आत्मा प्रसन्न ... और इसलिये वे स्वतः ही आनन्द पाते हैं। कभी भी ... जीवन की परवा न करो; किन्तु कर्त्तव्य कर्म किये जाओ; ... ही से जीवन का सुख मिलता है।

मृत्यु के डर से शुभ कार्य तो करो, परन्तु ... घबड़ाने से काम नहीं चलेगा। जीवन के अन्त तक कार्य ... मन में ईश्वर को अपना रक्षक समझो।

श्रम करते करते थक जाना एक स्वाभाविक बात है ... थकावट के दूर करने के लिये ही प्रकृति ने आराम ... योज़ की है। लोहे का रेलवे एञ्जिन भी निरन्तर ... सकता। उसे भी ख़ास मुकाम पर पहुँच कर छोड़ ... ज़रूरत पड़ती है। फिर सुकोमल मानव शरीर आराम क्यों ... बिना आराम मनुष्य जी नहीं सकता। श्रम कर चुकने ... विश्राम का आनन्द प्राप्त होता है। काम वाले के लिये काम की भाँति सुस्ताने और आनन्द मनाने की भी आवश्यकता ... इसीलिये सब देशों के विद्वानों ने अपने अपने देश और धर्म के ... सार त्योहारों की प्रथा निकाली है। त्योहार के दिन आनन्द म... और आराम करना मनुष्य जीवन में सुखदायक और आयुवर्द्धक

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हैं। उद्यमहीनों को किसी बात में भी आनन्द नहीं इसलिये श्रम करो और श्रम का फल-स्वरूप आनन्द ही से जीवन व्यतीत करने का नाम जीवन जीवन में आनन्द का दाता है।

मितव्ययिता ही धनाढ्यता है

एक विद्वान् और धनी पुरुष का कथन है कि, आमदनी से धनाढ्य नहीं होता, किन्तु जो कुछ उसे मितव्ययिता से यदि व्यय करता हो तो धनी बन सकता धन का मनुष्य से वही सम्बन्ध है जो शरीर का जब तक हमारा जीवन है, तब तक धन की आवश्यकता इसमें जो आनन्द से जीवन व्यतीत करना चाहें, वे धनी दरिद्र, अपनी आमदनी को सावधानता और करना सीखें। जिस तरह कमाना कठिन है, उसी तरह यथोचित व्यय करना भी कठिन है। अपनी आमदनी के को मितव्ययिता ही से खर्च करने से जीवन व्यतीत कर

मितव्ययी बनने के कई एक सरल उपाय हैं। का ध्यान रखो कि, जितना कमाओ उससे कम खर्च मितव्ययिता का तत्त्व यही है कि, अपनी कमाई में से भविष्यत् के लिये बचा रखा जावे। जो कर डालता है, वह मूर्ख है और विपत्ति उसके ऊपर तरह मँडराया करती है।

दूसरी बात यह है कि, जब कोई चीज़ खरीदो तुरन्त ही नक़द दाम उसके दे दो। उधार करने से अधिक

नावश्यक चीजें ले ली जाती हैं। किसी दशा में कर्ज न करो। ऐसा करने से मनुष्य में झूँठ बोलना, बेईमानी करना आदि दुर्गुण भी आ जाने का डर है। किसी जगह से हमें इतना रुपया मिल जायगा इस बात की आशा पर अपने हाथ का रुपया खर्च न कर डालो, क्योंकि सम्भव है कि, उस काम में तुमको धन की प्राप्ति न हो और तुम्हें कर्ज लेना पड़े। अपनी आमदनी और खर्च का ठीक ठीक हिसाब रखो। ऐसा करने से मनुष्य बहुत सी बुरी बातों से बचता है। हिसाब मितव्ययी बनने की अक्षर-दीपिका है। जो फ़ज़ूलखर्च हैं। उन्हें हिसाब रखते आलस्य मालूम होता है। किन्तु जो धनी होना चाहें, उन्हें मितव्ययी बनना चाहिये। धनवान् के लिये हिसाब किताब रखना ही आवश्यक है।

एक अङ्गरेज़ पादरी रोज़ अपना हिसाब किताब लिखता था। जब वह बहुत बुड्ढा हो गया तब उसने अपने कँपकँपाते हाथ से अपनी हिसाब की किताब में एक दिन यह लिखा—"७० वर्ष से अधिक काल तक मैंने अपना हिसाब बिलकुल ठीक रखा। किन्तु अब मैं और अधिक रखना नहीं चाहता, क्योंकि अब मुझे यह अभ्यास हो गया है कि, जो कुछ मैं बचा सकता हूँ, सब बचा लेता हूँ। जितना खर्च करना उचित है, उतना खर्च भी कर देता हूँ।" इस ऊपर की बात से हमें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि, हिसाब किताब रखना मनुष्य को फ़ज़ूलखर्च बनने से बचाता है। मनुष्य एक दिन बहुत बातों में व्यर्थ व्यय कर जावे तो हिसाब लिखने पर और सब का जोड़ लगाने पर उसको एक बड़ी रकम के अपने पास से खर्च हो जाने का ध्यान आवेगा और अवश्य दूसरे दिन कुछ कम खर्च करने का विचार रखेगा।

कुछ बड़े आदमी इन बातों में अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं, पर यह समझना भूल है। मनुष्य चाहे जितना बड़ा हो उसका यह

काम है कि, अपने निज के कामों में मन लगावे ... में अपनी दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और विद्या को काम में ... अङ्गरेज़ी की एक कहावत है कि, "यदि तुम पेन्सों की ... करोगे तो शिलिङ्ग अपने आप तुम्हारे पास रहने लगेंगे।" अपनी आमदनी में से मनुष्य को आधा ... रुपया बचाना चाहिये। मनुष्य को छोटे छोटे खर्चों पर भी ... रखना चाहिये और प्रत्येक विषय में यथोचित खर्च ... खर्च करने के समय इस बात का भी ध्यान रखना ... तुम्हारे ज़रूरी और उचित खर्चों में कमी न हो। पेट काट ... रुपया इकट्ठा करना और कंजूस मक्खीचूस कहाना भी ठीक नहीं ...

बिना मितव्ययी बने न कोई पुण्यदान कर सकता है ... कुँआ बावड़ी खुदवा सकता है। न कोई उदारता और ... का सच्चा परिचय दे सकता है। न अपने ... रक्षा का उपाय कर सकता है। सभा सोसाइटी, ब्याह ... सब काम मितव्ययिता ही से चलते हैं। जो ... पहिले तो खूब मौज उड़ाते हैं, अन्त में थोड़े दिनों पीछे ... दृष्टि से गिर जाते हैं और छोटी छोटी नौकरी करते या भीख ... फिरते हैं। जितने बड़े बड़े विद्यालय, कारखाने, ... अनाथालय आप देखते हैं, वे सब मितव्ययी सज्जनों ... हुए हैं।

बुद्धिमान् से बुद्धिमान् मनुष्य भी बिना मितव्ययी बने, ... लड़के बालों को नहीं पाल सकता, न उनको शिक्षा देकर ... ही बना सकता है। सचमुच दुनिया के सब काम धर्म ... के रुपये पैसे ही से चलते हैं।

फ़ुज़ूलखर्च बहुधा वे ही देखे जाते हैं, जिन्हें उचित ... मिलती है। वे ही बुरे शौकों में फँस कर फ़ुज़ूलखर्ची

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सम्पत्ति की वृद्धि का कारण मेरी युवावस्था की मितव्ययिता है। मितव्ययिता ही पारस पत्थर है जिसके छूने से धन, पूत्र सब। अमेरिका के प्रसिद्ध पुरुष फ्रैंकलिन ने कहा है—"काम कर और परिश्रम में दत्तचित्त रहना निस्सन्देह उत्तम है। परन्तु भी अधिक आवश्यक यह है कि, मनुष्य हरदम मितव्ययिता विचार रखे। जो मनुष्य धन का कमाना तो जानता है, कि उसकी रक्षा करना नहीं जानता, वह जीवन के थकाने वाले में व्यस्त रहता है और चलते समय कुछ नहीं छोड़ जाता है।"

वही मनुष्य सौभाग्यशाली और पराक्रमी है जो मन धन कमाकर अपने भाइयों और देशवासियों के लाभ के लिये छोड़ जाता है। परमेश्वर ने टेव या स्वभाव में यह शक्ति की है कि, मनुष्य हर प्रकार का काम इसकी सहायता से मिहनत और दुःख के कर सकता है। जैसे हर कोई सरल फ़ुज़ूलख़र्ची की आदत डाल लेता है, उसी तरह यदि वह तो मितव्ययिता की आदत भी डाल सकता है। किसी से रुपया भी क़र्ज़ लेना बुरी बात है। जो आदमी ऐसा करता है अपनी मजमनसाहत और स्वतन्त्रता को खोता है। जो अपनी रूखी सूखी रोटी खा कर पानी पीता है, वही सुखी है। धनाढ्य होकर जो क़र्ज़दार है, वह कदापि सुखी नहीं है।

अरब देश की कहावत है कि, ऋण मुहब्बत की कैंची। धीन वाले कहते हैं कि, क़र्ज़ प्रतिष्ठा की हानि है। महाभारत ऋणी पुरुष को महादुःखी बताया है। फ्रैंकलिन क़र्ज़ लेने व को गुलामों की हैसियत में मिलाता है। इससे यह स्पष्ट है। क़र्ज़ लेना बुरी बात है। जो मितव्ययी नहीं है, वह ज़रूर क़र्ज़ ले इससे मितव्ययिता का सदैव ध्यान रखे। विद्वान् का कथन है।

यदि तुम अपना व्यय अपनी आय से कम रख सकते हो, तो समझ लो कि, पारस का पत्थर तुमने प्राप्त कर लिया।

सन्तान

मनुष्यों को सन्तान से बड़ा प्रेम होता है। ऐसा कोई संसारी पुरुष नहीं जिसे पुत्र व कन्या की इच्छा न हुई हो। विवाहिता दम्पती को सन्तान के मुखदर्शन की बड़ी आकांक्षा रहती है। पुत्र व कन्या के मुख को देख कर जैसा आनन्द होता है उससे अधिक आनन्द पुत्र व पुत्री को सुखी और निरोग देखकर होता है हमारे देश में अविद्या ने ऐसा घटाटोप डाला है कि, हम अपनी सन्तान का लालन पालन करना भूल से गये हैं। सन्तान का पालन हमारी अशिक्षित स्त्रियां करती हैं। इससे अनेक बालक पालन पोषण ही में चल बसते हैं। जो बच कर जीवित रहते हैं, उनकी दशा अच्छी नहीं होती। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नतियों से वह वञ्चित रहते हैं।

और देशों की तरह हमारे यहां के माता पिता भी अपनी सन्तान की उन्नति चाहते हैं। उन देशों के लोग उनको बड़ा बनाने में बड़ी सहायता करते हैं; किन्तु अपनी अविद्या से यहां के लोग अपनी सन्तान को अवनति की ओर ढकेलते हैं। ऐसे मनुष्य कम पाये जाते हैं, जो अपनी सन्तान की प्रकृत भविष्य उन्नति करने में उदासीन न हों। पुत्र का घर में जन्म लेना एक सुख की बात है, किन्तु बिना शिक्षा दीक्षा के उस पुत्र से हम कदापि सुख नहीं उठा सकते हैं। जो सन्तान का सुख उठाना चाहें उनका धर्म है कि, वे सब से प्रथम अपनी सन्तान के चरित्र के उन्नति साधन में मन लगावें। उसके पश्चात् विद्या-शिक्षा द्वारा उसकी मानसिक उन्नति

में दत्तचित्त हों। फिर उसे गृहस्थ के ... सन्तान का प्रकृत सुख भोगने के अधिकारी तब हो सकते हैं।

बच्चों का स्वभाव प्रायः उच्छृङ्खल होता है। जो उनके जी में आता है, वे वही करते हैं। उपदेश, शिक्षा और शासन द्वारा उनका सुधार हो सकता है। बालक को मारना पीटना उचित नहीं है। पहिले उसे उपदेश और शिक्षा द्वारा समझाने की चेष्टा करे। जब इन दोनों बातों से भला फल न मिले तब उसको दण्ड दे। उस समय आप क्रोध के वश में न हो जावें, किन्तु क्रोध को अपने वश में करके बच्चे को दण्ड दें। सन्तान को सन्मार्ग में लाने के जितने उपाय हैं उनमें दण्ड देना सब से निकृष्ट है। दो चार वर्ष के बच्चों का ताड़न करना वृथा है। मारने पीटने से बच्चों की स्वाभाविक सद्वृत्ति बिगड़ती है। इससे बहुत सोच समझ कर ... पर हाथ उठाना चाहिये।

लड़कों को भली और बुरी दोनों बातों को खूब सम... चाहिये। बुरी बातों की ओर से उनके जी में घृणा क... उचित है। कुसंग बच्चों को बड़ा बिगाड़ता है। उनसे ... दूर रखना चाहिये। कुसंगति से क्या क्या दोष होते ... कैसे आत्मरक्षा करनी चाहिये, ये सब विषय बच्चे के ... में अंकित कर देने चाहिये। जब उनके मन में कुसंग ... हो जायगी, तब वह स्वयं कुसंग से बचने में यत्नवान ... बालक धन्य हैं, जिनके हृदय में कुसंगति के प्रति घृ... हो गयी है।

जब सन्तान पन्द्रह सोलह वर्ष की हो जाये, तब उ... का सा व्यवहार करे। उस समय उसे संसार के ना...

परिचय करा देना उचित है; किन्तु बुराई और भलाई का ज्ञान उसे सब विषयों में कराता चले। बुरे बालकों और दुष्ट जनों की संगति से पुत्र को दूर रखे। दया, शील, परदुःख-कातरता, भगवान् में भक्ति, प्रीति और कृतज्ञता आदि सद्गुणों का बालकों को सिखलाना चाहिये। इन विषयों में अभ्यास कराने से सच्चरित्रता की वृद्धि होती है, जीवन का कर्तव्य क्या है और लक्ष्य क्या है, इन सब बातों को समझाने के लिये उसे योग्य बनाना चाहिये। रुपये पैसे का मानव जीवन में क्या संबन्ध है और रुपया पैसा कैसे व्यय करते हैं और कैसे जमा करते हैं, इसकी शिक्षा देनी चाहिये। सत्पुरुषों के जीवन चरित्र इन विषयों में सहायता करने वाले हैं।

उन्नत और पवित्र चरित्र होकर भगवान् की कृपा का अधिकारी बनना जीवन के लिये परम सौभाग्य की बात है। जो प्राणी सरल हृदय से जीवन में प्रभु की कार्यकुशलता और दया का अनुभव करते हैं उनके समान संसार में कौन सुखी हो सकता है? बाल्यकाल में धार्मिक शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। बचपन में मनुष्य बहुत ही अनुकरणप्रिय होता है। ज्यों ज्यों वह बढ़ता जाता है त्यों त्यों अनुकरण की प्रीति कम होती जाती है। इसी से माता पिता को बहुत सावधान रहना चाहिये, उनके सामने कोई अन्याय कर्म या झूठ बात न बोलनी चाहिये। उनके आगे सब काम न्याय और सत्य मर्यादा के भीतर ही करने चाहिये। सच तो यह है जैसा तुम अपनी सन्तान को देखना चाहते हो वैसे ही स्वयं बनो।

लड़कों और लड़कियों दोनों के पालन और शिक्षा में समान ही दत्तचित्त होना आवश्यक है। पितायन में ऐसी शिक्षा दी जाती है जिससे कभी कभी कोई कन्या आजन्म कुमारी रहती है और

परोपकार में रत रहती है। किन्तु हमारे देश में यह बात नहीं। लड़कियों को घर के काम काज और सन्तान के पालन पोषण की शिक्षा देनी उचित है। इसके साथ ही श्वशुरगृह में उनको क्या करना चाहिये। श्वशुर, सास और पति से उन का क्या सम्बन्ध है, ये सब विषय उन्हें हृदयङ्गम करा देने चाहिए। आज कल हमारे घरों में अनेक झगड़े टंटे उचित शिक्षा के न होने से हो रहे हैं। विद्या शिक्षा के द्वारा मानसिक वृत्ति विकसित होती है, मौखिक उपदेश या अन्य उपाय से ऐसा करना कठिन है। शिक्षा के द्वारा हृदय मार्जित होने से संसार सुखमय बन जाता है।

लड़कों को विद्या से विभूषित करना सब मानते हैं। अशिक्षित पुत्र माता पिता के सदुपदेश का मार्यादित स्वर सच्चरित्रता के ग्रहण करने से जीवन में जितना सुख मिलता है उतना और किसी चीज से नहीं मिलता। विद्यारहित और चरित्रहीन सन्तान की अपेक्षा, विद्वान् तथा चरित्रवान् सन्तान कहीं सुखदायक है। जिस परिवार में सब सदाचारी और सच्चरित्र हैं उस घर में दुःख नहीं आता। जिसका मन जितना उन्नत है उतना ही अधिक सुखी है। सन्तान का यथार्थ सुख उसे शिक्षित बनाने ही से मिल सकता है।

चरित्रहीन और अशिक्षित सन्तान के पिता माता होने से बढ़ कर दुःख और नहीं है। इस दुःख पाने से सन्तानहीन रहना अच्छा है। एक नीतिज्ञ कहता है—

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम् ॥

जो न पंडित है और न धर्मात्मा है, ऐसा पुत्र उत्पन्न होने से किस काम का? जैसे कानी आँख से कुछ काम नहीं निकलता केवल आँख में पीड़ा ही होती है।

चाह

"चाह घटी चिन्ता गयी, मनुआ बेपरवाह।
जाहि कछू ना चाहिये, सो साहनपति साह॥"

इस दोहे में जो भाव प्रकट किया गया है, वह एक अंश में अच्छा है, परन्तु वर्तमान समय में यहां के लोगों के लिये हानिकारी है। अच्छा तो उनके लिये है जिनको बड़ी तृष्णा है और जो रात दिन तृष्णासागर में निमग्न रहकर तरह तरह के दुःख उठाते रहते हैं। वे इस दोहे से कुछ शिक्षा ग्रहण कर अपने मनःकष्ट को दूर कर कुछ शान्ति लाभ कर सकते हैं। परन्तु जो लोग पुरुषार्थहीन और आलसी हैं, वे ऐसे सिद्धान्त हृदय में धारण करके उलटा अपना बिगाड़ कर सकते हैं। जगत् में जो कुछ नूतन आविष्कार और [illegible] हो रहे हैं और जो कुछ उन्नति सब बातों में हो रही है, वह कुछ भी न हो यदि उन बातों की चाह न हो। इसलिये ऐसा भाव इस दोहे में दिखाया गया है, वह आजकल के समय में भारतवर्ष के लिये किसी तरह उपयुक्त नहीं है। यहां पर तो उत्साह, उद्यम और अध्यवसाय की बड़ी कमी है। इसलिये आज कल लौं चार सौ वर्ष के भीतर के समय में संसार की असारता और पौरुषहीनता के भाव पैदा करने वाले सिद्धान्त जो इन लोगों में फैल गये हैं, उनको दूर करने का उद्योग करना चाहिये। जो संसार को असार मान लेगा, वह सांसारिक बातों में क्या उन्नति करेगा? या जो अपने को ब्रह्म समझ लेगा, उसको फिर किस उन्नति की आवश्यकता रह गई? या जिन्होंने यह समझ लिया कि जिस परमेश्वर ने गर्भ में पालन किया, वह अब भी हमको बिना हाथ पैर हिलाये आहार देगा; जो जल में, थल में, नभ में, सब प्राणियों को आहार पहुंचाता है, वह अवश्य हमारी भी सुधि लेगा।

"अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहैं, सबके दाता राम॥"

ऐसे ऐसे विचार के लोगों ही ने कुछ भी उद्यम न अपने खान पान और जीवन निर्वाह का भार दूसरों पर [illegible] विभवशाली आर्य्यावर्त को दरिद्र हिन्दुस्तान बना [illegible] आर्य्यावर्त के लिये दूसरे देश वाले कहते थे कि यहाँ की नदियां बहती हैं, यहां के लोगों का उदरपूर्ण अब [illegible] ईसाइयों की खैरात पर होता है। हिन्दुस्तान [illegible] दोनों काल भोजन करना जानते ही नहीं। करोड़ों लड़के लड़की ऐसे हैं, जिनको एक काल भी भर पेट ३६५ दिनों में नहीं मिलता। ऐसे लोग फसल के दिनों भोजन कर लेते थे, परन्तु अब अकाल की भी महंगी दिनों में रहने लगी। क्या अब भी हमको अपने निर्वाह के लिये कुछ उद्योग न करके कीड़े मकोड़े की तरह रहना चाहिये? नहीं, कदापि नहीं। अब ऐसा समय आ [illegible] कि, अब यदि हम लोग उद्योग न करेंगे और हाथ पर बैठे रहेंगे, तो हमारा नामनिशान ही दुनिया से मिट जायगा।

हमारे विचार में चाह अच्छी है और सदैव अच्छी की चाह होनी चाहिये, परन्तु अनुचित बातों की चाह [illegible] में बुरी है। असम्भव बातों की चाह भी बुरी है। असम्भव की चाह करके कभी कष्ट न उठाना चाहिये।

मन में जब अनुचित चाह उत्पन्न होती है तब उसे इस विचार नहीं रहता कि अमुक पदार्थ जिस पर मैं मोहित [illegible] लाभ होगा या नहीं और मेरे योग्य है या नहीं। केवल [illegible] का उत्तम भोजने भोगने ही विवेक बनी [illegible] कुछ [illegible]

रन इन्छित-वस्तु में तन्मयलीन हो जाता है और उसके चारों ओर उसीका चित्र घूमने लग जाता है। जिधर दृष्टि जाती है उसी प्रेम-पात्र का ध्यान आता है। निदान अधिक चाह के कारण बहुधा लोग अपने रूप को भूल अनेक प्रकार के अपमान, निन्दा और ईर्षा भी सहते हैं।

विषयवासना अर्थात् विषय भोग की चाह सदैव दुःखदायिनी है। विषय भोग से मनुष्य को कभी तृप्ति नहीं होती, यथा—

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥"

कामना भोग से शान्त नहीं होती। अग्नि में घृत पड़ने से जिस प्रकार वह प्रचंड होती है, उसी प्रकार विषय तृष्णा भी भोग विलास से बढ़ती है। जिसको विषयी जन तृप्ति मानते हैं वह तृप्ति क्षणिक है। अल्पकाल ही में पुनः चाह द्विगुण हो जायगी। जैसे अग्नि में एक साथ अधिक घृत डालने से प्रथम ऐसा भान होता है कि अग्नि कुछ मन्द पड़ गया, परन्तु क्षण भर में ही प्रचंड ज्वाला निकलने लगती है। इसी भाँति अभीष्ट वस्तु से क्षण मात्र शान्ति मिल जाती है, परन्तु सच्चा अखंड सुख कभी नहीं मिलता। इसलिये विचारवान पुरुषों को उचित है कि किसी काम्यवस्तु पर अपने चित्त को मोहित न होने दें। मोह ही दुःख का कारण है, चाह से उत्पन्न होकर मोह मनुष्य को दुःख के भँवर में डालता है। मन के अपने वश में होने से इन्द्रियों का दमन हो सकता है और फिर मनुष्य दुःखदायी अनुचित विषय विलास से बच सकता है।

विषय भोग की चाह मनुष्य को सदैव दुःख देने वाली है। इससे विषय विलास के पदार्थों की चाहना कभी भी करनी उचित

हमें आज के दिन कोई न कोई ऐसा काम जरूर करना चाहिये, जिससे हमारा और हमारे देश का उपकार हो। आज काम करने लिये एक कवि कहता है—

"काल करो सो आज कर, आज करो सो अब।
पल में परलय होयगी, फेर करोगे कब॥"

वास्तव में आज का दिन एक बड़ी चीज़ है। कोई आलसी आदमी कहा करते हैं कि आज नहीं कल लेंगे, पर कहिये तो क्या यह बता सकते हैं कि आज का दिन छोटी बात है? आज के दिन हज़ारों लाखों रुपयों का लाखों रुपये का नफा-नुकसान हो जायगा। यह देखो, ही परलोक यात्रा कर गये। आज कितने ही घरों में पुत्रों [illegible]
[illegible]

[illegible]

माता के शब्द में न जाने ईश्वर ने कैसा माधुर्य है कि, यह जिस शब्द में जा मिलता है। उसी शब्द में सरसता, विचित्र माधुर्य तथा हृदयग्राही है। जैसे मिश्री की डली दूध, पानी आदि किसी भी आय, वह वहाँ ही मीठापन पैदा कर देगी। कहता है कि, यदि मुझसे पूछा जावे कि, संसार के भाषा में सबसे मधुर शब्द कौनसा है, तो मैं के कोष में यही शब्द सबसे अधिक मीठा है अपनी जननी को पुकारता है। रोते हुए बालक

[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है।

[illegible] में [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] गई है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो नहीं सकते। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] जिनमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] की [illegible] है। संस्कृत में [illegible], हिन्दुस्तान की अनेक [illegible] में [illegible] और [illegible], [illegible] में [illegible] और फारसी में [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] है। सचमुच [illegible] [illegible] [illegible] में एक ही है। इनकी [illegible] को कोई [illegible] ही [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] का [illegible] निम्नलिखित है। इनके [illegible] से [illegible] [illegible] एक ही [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible]) [illegible] हैं। एक ही शरीर के [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] है। इनके द्वारा ही सृष्टि का [illegible] [illegible] रहता है। मनुष्य [illegible] की [illegible] और [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] से [illegible] कर संसार को चलाते हैं। परन्तु [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] को प्राप्त कर सकता है, [illegible] [illegible] [illegible] और उनके [illegible] से मुसकराते बच्चे के हृदय में [illegible] करता है?

[illegible] [illegible] [illegible]

इसमें सन्देह नहीं कि, पति पत्नी का बन्धन बड़ा दृढ़ और चिरस्थायी होता है। परन्तु बालक माता ही का एक भाग है। जन्म लेने पर ही बालक माता से अलग दीख पड़ता है। माता और बालक का सम्बन्ध फिर भी दृढ़ रहता है। बालक में जीवन आते ही तथा उसके संसार में आने पर माता ही उसकी एक मात्र पालन पोषण करने वाली शक्ति है। माता और सन्तान का विचित्र सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध की बराबरी संसार का कोई सम्बन्ध नहीं कर सकता है। पिता का गौरव माता से दूसरे दर्जे पर रखा है, इसलिये ही माता पिता उच्चारण किया जाता है, पिता माता कोई नहीं कहता। माता सी वस्तु संसार में और कोई नहीं है। वेदों में भी पहिले मातृमान् है, पीछे पितृमान् और उसके पश्चात् आचार्यवान्। इससे भी माता का दर्जा बहुत बड़ा ज्ञात होता है। मनु जी महाराज ने भी मनुस्मृति में माता की प्रतिष्ठा पिता से हज़ारगुनी अधिक लिखी है। मातृभूमि हमारी माता की माता और हमारे सब देशवासियों की माता है। उसकी गोद में हम पल कर पुष्ट हुए हैं। जो अपनी मातृभूमि का प्रेम करना नहीं जानते, क्या वे मनुष्य कहलाने के योग्य ठहर सकते हैं?

एक अङ्गरेज़ कवि कहता है—"क्या कोई ऐसा आत्महीन मनुष्य है, जो अपनी मातृभूमि का नाम प्रेम से नहीं लेता! जिसे अपनी मातृभूमि से प्रेम और अनुराग नहीं है, वह मनुष्य जीवित कदापि नहीं कहा जा सकता।" मातृभूमि की ममता पशु पक्षियों तक पायी जाती है। क्या एक तोते की कहानी सुनी है, जिसने अपनी मातृभूमि के वियोग में छटपटा कर अपना प्राण त्याग दिया था। मातृभाषा मातृभूमि की मधुर भाषा है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि अपनी मातृभूमि और मातृभाषा की सेवा करे और उसका सम्मान करे। मातृभूमि की भूल से संसार में

के अभिमुख मूल्य है । मातृभूमि की पवित्र धूल को शिरोधार्य करो । वही हमें मातृ पूजन करने योग्य बनायेगी । क्या अपनी माता को भूल जाने से कोई सुख पा सकता है ? माता से जन्म पाने की बात कभी मत भूलो, नहीं तो कृतघ्नी कहलाओगे । मनुष्यत्व के ऊँचे से गिर जाओगे । बहुत सँभल कर चलने का अवसर है । हमारी मातृभूमि हमारी सच्ची माता है । हम चाहे कभी अयोग्य बन जायँ, परन्तु माता कुमाता कभी नहीं हो सकती । हमारी इस मातृभूमि ने बड़े बड़े प्रतापवान् एवं तेजधारी पुत्र पैदा किये हैं । यह हमारे पुरुषाओं की माता है । हमारे श्रीराम और श्रीकृष्ण इसकी धूलि में खेले हैं । व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, प्रताप, शिवाजी, आर्य भट्ट, भास्कराचार्य प्रभृति महाशय सब इसकी सन्तान थे, जिन्होंने अपनी योग्यता से संसार भर को दैदीप्यमान कर दिया था । दर्शन, उपनिषद्, सब हमारी माता की सन्तानों ही के रत्न हैं । जो अपनी मातृभूमि की सेवा करने से मुँह मोड़ते हैं, उनके समान पापी कौन है ?

मातृभूमि का जो ऋण हमारे ऊपर है, उसको भूलना कदापि उचित नहीं है । मातृभूमि को दुःख में, सुख में, देश में, परदेश में कभी न भूलो । स्मरण रहे कि माता के आशीर्वाद तथा शाप दोनों में बड़ी शक्ति है । हमारा कर्त्तव्य है कि जिस मातृभूमि का अन्न खा कर हमारे पुरखा पले थे, जिस मातृभूमि में हमारे माता पिता ने हमें जन्म दिया है, जिसका पानी और फल खाकर हम अपनी जीवन-यात्रा चला रहे हैं, उस मातृभूमि की सेवा में हम तन मन धन अर्पण करें । मातृभूमि की सेवा हम कैसे करें ? यह बात हम सब उन्नत देशवासियों तथा अपने शासक अंगरेज़ों से बहुत कुछ सीख सकते हैं । एक सपुत्र बेटे को देखकर कुपुत्र बेटा भी सुधर सकता है । आज हम अपनी माता का सम्मान और पूजा भूल

गये। मातृभूमि की सेवा करना भूल गये। सभ्य जातियों की दृष्टि में अपना सम्मान बनाये रखने के लिये मातृभूमि की पूजा करना ही एक मात्र उपाय है। अपने भाइयों की रक्षा और मातृभूमि की सेवा के लिये तन मन धन अर्पण करो। प्राण तो देह पिंजर से एक न एक दिन निकलेंगे ही, अच्छा हो कि मातृभूमि की सेवा करते करते यह निकलें, जिससे अशान्ति दूर हो, राजा प्रजा में प्रेमभाव का पूर्ण विकाश हो, देश की दरिद्रता मिटे, विद्या का प्रकाश हो। इसके लिये प्राणपण से चेष्टा करना ही मातृभूमि की सच्ची सेवा है। एक कवि कहता है—

जननी अरु निज भूमि को, यह प्राण हु से देय।
ताको सेवा करन को, प्राण न कछु धरेय॥

जीवन का लक्ष्य

एक विद्वान् ने एक ग्रन्थ में लिखा है—"प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन का कोई लक्ष्य स्थिर करना चाहिये। ऐसा करने से मानव जाति की बहुत कुछ उन्नति हुई है और आगे को उन्नति होनी सम्भव है। यदि इस कथन पर विचार किया जाय तो यथार्थ ही ज्ञात होता है। जितने बड़े मनुष्य हुए हैं और जिनकी कीर्ति-पताका आज भी फहरा रही है, वे सब इस श्रेणी के मनुष्य थे। उनके जीवन चरित्र इस बात की पुष्टि करते हैं कि, बड़ी बड़ी विघ्नबाधाओं से [illegible] करने के पश्चात् उन्होंने अपने लक्ष्य को प्राप्त किया था।

बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था हमारे जीवन की तीन दशा हैं। हमारा बचपन जीवन-संग्राम के लिये [illegible] की तैयारी में व्यतीत होता है। इस अवस्था में हम अपने

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ढूंढना चाहिये। नीचा लक्ष्य स्थिर करने से मनुष्य नीचता को प्राप्त हो जाते हैं। जिन लोगों ने अपना लक्ष्य खाना कमाना ही बना रखा है, वे पशु से अधिक काम अपने जीवन में नहीं कर सकते। जो जितनी स्वार्थपरता में लिप्त रहता है, वह उतनाही नीच पुरुष होता है। वेश्यागामी अपनी स्त्री और सन्तानों को भूखों मार कर, कुकर्म किया करता है। लक्ष्य स्थिर करने में बड़ी सावधानी से काम लो।

महान् चरित्र वाले पुरुषों के जीवनचरित्र पाठ करने से लक्ष्य स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है। उससे ज्ञात होता है कि उन महात्माओं ने अपना लक्ष्य क्या स्थिर किया था। उनके जीवन में कितनी रुकावटें आयीं, कै बार उनको निराश होकर बैठना पड़ा, कैसे उन्होंने धैर्यपूर्वक काम कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया; "कार्य्यं साधयेयम् वा शरीरम् पातयेयम् वा" इस मंत्र का उन्होंने कहाँ तक साधन किया था। लक्ष्यहीन मनुष्य उस चलनेवाले घोड़े के समान है, जो चलने की पूर्ण सामर्थ्य रखने पर भी यह नहीं जानता कि मुझको कहाँ जाना है। लक्ष्यहीन मनुष्यों को बुद्धिमान लोग चञ्चल चित्त वाले मनुष्यों के समान समझते हैं। ऐसे लोग लट्टुओं का सा काम करते हैं। जैसे बालक नित्य नये खिलौने देख कर, पुराने की चाह नहीं करते, बार बार जीवन के लक्ष्य बदलने वाले मनुष्य भी ठीक उसी प्रकार के हैं, जो कि वस्तुओं के मूल तत्त्व पर विचार न कर, उसकी बाहरी चमक दमक ही पर मुग्ध हो लुभा जाते हैं। जीवन के किसी एक लक्ष्य को स्थिर किये ही उस पथ में चलने से यह सफलता की सम्भावना हो सकती है, इसमें सन्देह ही जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते समय बहुत सोच समझ कर सिद्धान्तों की सम्मति अनुकूल प्रत्येक मनुष्य को एक लक्ष्य स्थिर करना चाहिये।

लक्ष्य के प्राप्त करने में बड़े यत्न की आवश्यकता है। कभी कभी इसमें प्राणहानि भी हो जाती है। परन्तु लक्ष्य के साधक ऐसी बातों से ज़रा भी नहीं हिचकते। सत्कार्य्य में मरना भी पवित्र मृत्यु की गोद में बैठकर कीर्त्ति के मुकुट को धारण करना है। जो योद्धा संग्राम भूमि में जय प्राप्ति और देश के गौरव के लिये तन मन त्याग देते हैं, क्या वे प्रतिष्ठा के पात्र नहीं हैं? हमारे शास्त्रकारों ने ऐसे ही वीर पुरुषों के लिये स्वर्ग की प्राप्ति बतायी है। मजनूँ का लक्ष्य लैली को प्राप्त करना था। क्या वह उसके साधन में अपने शरीर का रक्त तक दे डालने में हिचका? सुकरात का लक्ष्य सत्य का प्रचार करना था। क्या उसके साधन में उसे हलाहल का प्याला नहीं पीना पड़ा? श्रीरामचन्द्रजी का लक्ष्य "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" था; इसके लिये उन्होंने वनवास कर, कितने दुःख झेले; परन्तु लक्ष्य को न छोड़ा, राक्षसों का विनाश कर सुख शान्ति को स्थापन किया।

कोई कोई काम किसी सज्जन द्वारा किया अच्छा और दुर्जन द्वारा किया बुरा कहा जाता है। इससे काम की उत्तमता व निकृष्टता काम करने वाले के चरित्र पर भी निर्भर है। सच्चरित्रता मनुष्य की मनुष्यता की नींव है। इसी पर जीवन की इमारत खड़ी होती है। इससे कैसा ही काम करना पड़े लक्ष्य तुम्हारा उच्च और उदारता पूर्ण होना चाहिये। लक्ष्य के साधन के लिये काम करना बड़ा आनन्ददायक होता है, और निश्चित कार्यों के पूर्ण होने पर जीवन सफल और जयदेवी का दर्शन प्राप्त होता है। लोकोपकारी कार्यों से जीवन की शोभा है और ऐसे ही कार्य्य करने वाले मनुष्य बड़े कहलाते हैं। संसार में ऐसों ही का पूजन होता है। महात्मा अपने महत् चरित्रों के कारण ही महान् पुरुष कहलाते हैं।

पृथ्वी पर सब लोग चाहते हैं कि, हम बड़े बनें, परन्तु ऐसे मनुष्य थोड़े कार्य करते हैं। यदि कोई उच्च [illegible] उसका कर्तव्य है कि संसार क्षेत्र के द्वार पर खड़ा हो कर विचारे कि, उसका चित्त किस ओर झुकता है। उसी ओर उस को लक्ष्य स्थिर करना चाहिये। विश्वास, धैर्य और सारी शक्ति से उसकी प्राप्ति का यत्न करे। लक्ष्य के ऊपर [illegible] ऐसा तल्लीन हो जावे कि निश्चित लक्ष्य के सिवाय और किसी का ध्यान ही न रहे। महाभारत में लिखा है कि, द्रोणाचार्य ने सब शिष्यों को एकत्रित करके यह [illegible] कि शस्त्र संचालन में कौन कितना योग्य है! उन्होंने [illegible] धनुर्विद्या में शिल्पकार से एक कृत्रिम गिद्ध [illegible] वृक्ष पर रखवा दिया। फिर वे शिष्यों से बोले— "तुम [illegible] धनुष लेकर उसी बाण युक्त कर उस गिद्ध के [illegible] बताओ। मेरी बात को सुनते ही उस पक्षी के सिर [illegible] पड़ेगा।" द्रोण पहले युधिष्ठिर से बोले—"तुम उस गिद्ध के [illegible] लक्ष्य बनाओ, मेरी बात के समाप्त होते ही बाण [illegible] ने बाण भर पीछे युधिष्ठिर से पूछा— "राजकुमार! [illegible] बैठे गिद्ध को देखते हो?" युधिष्ठिर बोले— "हाँ देखता हूँ।" [illegible] ने कुछ काल पीछे फिर पूछा तो युधिष्ठिर ने [illegible] मैं इस वृक्ष को, आपको भाइयों को और इस पक्षी को [illegible] द्रोणाचार्य के बार बार पूछने पर उन्होंने [illegible] उत्तर दिया। इसी प्रकार अन्य शिष्यों ने [illegible] यही उत्तर दिया कि [illegible] देखता हूँ। [illegible] गुरु की आज्ञा से धनुष में बाण लगा [illegible] पश्चात् द्रोण ने उनसे पूछा— "तुम [illegible] मुझको देखते हो।" [illegible] उत्तर दिया— [illegible]

देखता हूँ । वृक्ष को या आपको नहीं देखता हूँ ।" अनन्तर द्रोण ने प्रसन्नचित्त होकर महारथी अर्जुन से बोले—"यदि तुम पक्षी को देखते हो तो कैसा देखते हो ।" अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं उस पक्षी का सिर मात्र देखता हूँ, शरीर नहीं देखता ।" अर्जुन की यह बात सुनकर द्रोण का शरीर हर्ष से रोमाञ्चित हो गया । पश्चात् उन्होंने कहा—"अब बाण छोड़ो"। तब पाण्डुपुत्र अर्जुन ने बाण छोड़ा और उस बाण से पक्षी का सिर कट कर नीचे आ गिरा । द्रोणाचार्य ने प्रसन्न हो कर, अर्जुन को गले लगाया और शिष्यवर्ग कौरवों व पाण्डवों को शिक्षा दी कि, इस प्रकार लक्ष्य साधन करने वाला ही पुरुष सफलता प्राप्त कर सकता है ।

ठीक इसी तरह लक्ष्य साधन के लिये हमें अर्जुन के समान तन्मय होना चाहिये । लक्ष्य के साधन में कोई बात उठा नहीं रखनी चाहिये । यह असार संसार ऐसे ही नररत्नों की चरित्रावली से विभूषित होने के कारण सुन्दर दीख पड़ता है । एक कवि कहता है—

ऐसा जी तू कि याद करने पे,
गाहे गाहे तो कोई याद करे ॥

आशा

आशा के होने पर ही धीरज और सहनशक्ति स्थिर रहती है । कैसा ही दुःख क्यों न आ जाये, कभी भी निराश न होना चाहिये । जो आशावान् रहता है, वही फिर प्रयत्न कर सफलता प्राप्त करता है । बटलर नामक विद्वान् का कथन है—"शत्रु के आगे से भयभीत हो कर, भागना और बिना सामना किये हार मानना, किसी मनुष्य

के प्रारब्ध में नहीं लिखा है, परन्तु यह उनके अपने ही दोष है।" सिडनी स्मिथ कहता है "यदि संसार में हम कोई किया चाहते हैं तो हमको संसार रूपी समुद्र के किनारे पर होकर, भय से कांपना न चाहिये; किन्तु उसमें कूद पड़ना और यथासाध्य चेष्टा कर, उसके पार जाना चाहिये।"

मनुष्य वास्तविक भयों से उतना नहीं डरता है, ... वह निर्मूल आशङ्काओं से डरा करता है। जैसे कि, कोई इस डर से डरा करते हैं कि, लोग उनके कामों पर हंसेंगे। निर्मूल डर का भय कभी न करो।

एक बार बहुत से सैनिक जो युद्ध में अवश्य ही विजय ... रात्रि में आकस्मिक भय से भाग निकले। आकस्मिक भय बहुधा काल्पनिक हुआ करते हैं और दिन के प्रकाश में वे कोई चिन्ता योग्य नहीं होते और बहुधा निर्मूल हुआ करते हैं।

शेक्सपियर का कथन है कि कायर पुरुष अपनी मृत्यु से पहिले कई बार मर चुकते हैं, परन्तु वीर पुरुष एक बार ही मरा करते हैं।

बहुत से कष्ट पानी के बुलबुले के समान नष्ट हो जाते हैं और बहुत से शोक ऐसे होते हैं कि कल ही ये दूर हो जायेंगे, इसलिये कष्ट और शोक प्राप्त होने पर व्याकुल न होकर धैर्य से सहन करो। कोलेरिज जब बड़े कष्ट में निमग्न था उस समय उसने एक मित्र को लिखा था—"सब दुःखों और आपत्तियों में जो मुझको सहने पड़े, ईश्वर-कृपा की आशा मैंने कभी नहीं छोड़ी और मेरा विश्वास इस बात में अटल रहा कि जो कुछ कष्ट सह रहा हूँ, इसमें ईश्वर को मेरा कुछ उपकार ही स्वीकार होगा।"

यदि हम भविष्यत् का विचार जी में रक्खेंगे, तो हम अपने निर्दिष्ट मार्ग से अलग न होंगे। मनुष्य को सदैव पुरुषार्थ करना चाहिये और सफल मनोरथ होने की आशा रखना चाहिये। शेक्सपियर का कथन है कि "सन्देहों से हमारे कार्यों में बड़ी हानि होती है और शङ्काओं के कारण हम सफल नहीं रहते।"

वीरता पुरुष का केवल एक गुण ही नहीं है; किन्तु पुरुष का पुरुषत्व भी इसी में है। पुरुष को पुरुष होने के लिये वीर होना चाहिये, जैसा कि स्त्री को स्त्री होने के लिये मृदु होना चाहिये। यद्यपि पुरुष को भी मृदु और वीर होना चाहिये और स्त्री को भी वीर और मृदु होनी चाहिये, तथापि [illegible] वीरता यही है। वीरता इसमें नहीं है कि किसी जोखिम का विचार ही न किया जाय। किन्तु दृढ़तापूर्वक उसके सामना करने में है। बिना समझे किसी जोखिम में पड़ना वीरता नहीं है। आपत्ति के डर से कायरता उसको और भी बड़ा देती है। विपत्ति से रक्षा का मार्ग यही है कि वीरता से उसका सामना किया जावे। सम्पूर्ण शत्रु के आगे से भागना ही अपने वध किये जाने का अवसर देना है।

[illegible] का कथन है—"वही वस्तु हमको बड़ी भयानक प्रतीत होती है जिसको हम समझा नहीं जानते हैं। जब हम किसी आपत्ति को पूर्णतः जान जाते हैं और हम उसके अभ्यस्त हो जाते हैं, तब वह उतनी भयदायिनी नहीं रहती जितनी हम उसे पहले समझते थे।" तात्पर्य यह है कि प्रत्येक दशा में धैर्य धारण किये रहो।

[illegible] अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं है। अपने प्रत्येक उद्देश्य शीघ्र सिद्ध हो जाने की आशा न करो। क्यों कि सब काम पहले पहल ही कठिन होते हैं। जो मनुष्य धैर्य पूर्वक दृढ़ता से उद्योग करता है वही सब काम करता है।

यह एक सांसारिक नियम है कि हम चाहे कुछ भी करें, परन्तु ने के बिना सामना किये हम नहीं रह सकते और इसीलिये कहा गया है कि दुःख के समय उस समय का ध्यान करो जब तुम सुखी थे। दुनिया में कोई दुःख नहीं है जो दुःख में धैर्य नहीं व्यापता है। इस बात का विचार रखना चाहिये कि ज्यों समय बीतेगा, हमारे दुःख भी नष्ट होंगे। दुःखावस्था में यह र मनुष्य को बड़ी सहायता करता है। इसे कोहरा और मेघ बाद धूप निकला करती है और शीत के पश्चात् ग्रीष्म आती या रात्रि के विगत होने पर दिन का प्रकाश होता है, और बड़े न के पीछे शान्ति का विराजती है, इसी नियमानुसार दुःख के द सुख का अवसर भी अवश्य आता है।

लौंगफेलो कहता है—"हे दुःखी पुरुष! धैर्य धारण करो चिन्ताग्रस्त मत हो। इन बादलों के ऊपर सूर्य अब भी रहा है और तुम्हारी सी दशा हर एक मनुष्य की होती है। कुछ समय तक वर्षा होने के पश्चात् धूप अवश्य निकल आती सी तरह दुःख के बाद सुख को भी बारी आ जाती है।"

कभी ऐसा होता है कि जिसको हम दुःख समझ बैठे हैं वही सुख का मूल होता है। कष्ट और शोक कहीं कहीं छिपे सुख का सा काम कर जाते हैं। इतिहास इस विषय में पूर्ण रूप से दे रहा है कि बहुत से मनुष्यों पर दुःख पड़ने से वह काम जो उनके सदैव सुखी रहने से न निकलता। हमको इस का ध्यान रखना चाहिये कि जो कष्ट हम उठाते हैं, वह या रे दोष का फल स्वरूप है अथवा दूसरों की भलाई का मूल-है। बुद्धिमान् मनुष्य कभी भी अपने दुःखों पर पश्चात्ताप करते; किन्तु वे इस बात [illegible] करते हैं कि दुःख का कैसे हो।

"एपिक्टीटस कहता है—" शूरवीर ...
न होता यदि उसने हिंसक पशुओं और ...
के मनुष्यों का विनाश न किया होता। यदि वह ...
हुआ सुखस्वप्न देखा करता तो उसका नाम आज किसके ...
न निकलता और उसके शस्त्र व बल प्रयोग को कौन ...
किसे उसके धैर्य व उच्च भावों का परिचय मिलता? ...
को प्राप्त होता है जो अपनी वीरता और सहनशीलता ...
दुःख के अवसर पर दिखलाते हैं।

जब सुकरात को प्राण-दण्ड की आज्ञा हुई, तब उसके एक ...
ने कहा था "निश्चय ही आपके साथ अन्याय हुआ है।" ...
सुकरात ने कहा—" क्या तुम यह चाहते हो कि मैं दोषी हो... दण्डभागी होता?"

सदाचार

संसार में उत्पन्न होने के लिये चातुर्य्य की अपेक्षा सदा... और दृढ़ता की अधिक आवश्यकता है। सत्य को जानने ... अपेक्षा सत्कार्य्य को करना आवश्यक है। यदि हम संसार ... सुखी और सौभाग्यशाली होना चाहते हैं, तो हमें सन्मार्ग का ... लम्बन करना चाहिये। अच्छे काम करने ही से मनुष्य अच्छे ... देवता है।

किसी के जीवन का महत्त्व तब ही है जब उसमें सदाचार ... मात्रा अधिक हो। कैविल का कथन है कि "यदि एक बार ... विचार कर लो कि, आज से हमारा अन्तःकरण जिस कार्य ... करने का अनुरोध करेगा उसके करने में असमञ्जस किया ... तो तुमने सांसारिक सुख प्राप्ति की मानों कुञ्जी प्राप्त कर ... पापी इसको प्राप्त करने को असमर्थ होता है।"

अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर अथवा चालाकी से उससे बच कर अधिक काल तक तुम कदापि अपने सुख की वृद्धि न कर सकोगे। कवि यंग सूवर्न की उक्ति है कि "बुद्धिमान् और निपुणों में यही गुण होता है कि कायरोचित भयों को हृदय में स्थान नहीं देते, अपने कर्त्तव्य पालन में दृढ़ता से क्रियावान् बने रहते हैं; सत्य के पीछे हज़ारों कष्टों का सामना करते हैं; ईश्वर पर भरोसा रख कर, वे सब में कृतकार्य्य हो जाते हैं।"

जीवन में वास्तविक सफलता प्राप्त करने के लिये केवल एक ही बात की आवश्यकता है। रुपया आवश्यक नहीं है, शक्ति, चतुरी, प्रसिद्धि, स्वतंत्रता यहाँ तक कि स्वास्थ्य की भी इतनी आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है केवल सदाचार की। यही नष्ट होने से बचा सकता है। जिसने इसको गँवा दिया वह नष्ट हुए बिना नहीं रहेगा।

तुम अपने को जैसा बनाना चाहते हो वैसा ही तुम्हारा चाल-चलन हो जावेगा। हम सब न तो कवि या गायक हो सकते हैं, न विद्वान या वैज्ञानिक हो सकते हैं; ऐसी ही कितनी ही बातें हैं जिनके लिये प्रकृति ने हमको नहीं बनाया। तुम उन्हीं गुणों को दिखाओ जिन पर तुम्हारा अधिकार है जैसे सभ्यता, गम्भीरता, निर्लोभता, विषयों से उपेक्षा, परोपकार, अपव्ययिता से अप्रेम, स्वच्छन्दता और उच्च भाव। जिन गुणों को अपने में तुम दिखा सकते हो, उन्हें क्यों नहीं दिखाते? प्रकृति या तुम्हारी अयोग्यता उनके दिखाने में बाधक नहीं है, तो भी तुम अपनी इच्छा से उन गुणों का प्रकाश नहीं करते।

ऐसा कोई भी काम न करो जिससे तुम्हें लज्जित होना पड़े। कोई सम्पत्ति जो बड़े महत्व की है, वह अपनी ही है। सेनेका का

कथन है—"अपनी आत्मा का विचार सदा आनन्द देने वाले है।" फ्रैंकलिन ने, जिसके बहुत से शुभ विचारों के ... कृतज्ञ हैं, गुणग्रहण करने की एक प्रणाली का ... था। यद्यपि मैं उसके लिये अनुरोध नहीं करता, तथापि ... गुणों को भली भाँति समझ कर, उसने एक एक करके उनके ... करने की चेष्टा की। इस नियम से उसने १३ गुण प्राप्त किये। (संयम, मितभाषिता, क्रमबद्धता, स्थिरता, मितव्ययिता, अध्यवसायशीलता, सत्य शीलता, न्याय, परिमितता, स्वच्छता, शान्ति, पवित्रता और नम्रशीलता)।

बिशप विलसन का कथन है—"यदि हम किसी पुरुष को किसी दीन मनुष्य को रुपया देकर यह कहते हुए सुनें कि, तुम शराबखाने में जाकर इन रुपयों को खर्च करना अथवा जुआखाने में जाकर जुआ खेलना या कोई निकम्मा खिलौना खरीदना तो हमें कितना आश्चर्य्य होगा? जब यह दशा है, तब हमको वे ही काम अपने आप क्यों करने चाहिये, जिनको दूसरों को करते हुए देख कर, हम हँसते हैं।

सदैव ऊपर को देखो न कि नीचे को। लार्ड बेकन्सफील्ड का कथन है कि, "वह मनुष्य जो ऊपर को नहीं देखता नीचे को देखेगा और जो ऊपर चढ़ने का साहस नहीं करता, कदाचित् उसके भाग्य में नीचे पड़ा रहना लिखा है।" किसी कवि का कथन है कि "ख्याति में केवल नाम प्रसिद्ध होता है, परन्तु इस शब्द में वह शक्ति है कि मनुष्य को आत्मिक बल देती है और मन को उत्साहित कर देती है। मृत शक्तिशाली पुरुषों का विचार नवयुवकों में यह शक्ति सञ्चार करता है कि, जिससे वे हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि, वे भी पूर्वजों के समान कार्य्य कर, यशस्वी बनें।"

प्रवर्तित होता है । मनुष्य जीवन उन्नति करने ही के लिये है, एक गति में रहने को नहीं । हममें से अनेक मनुष्य किसी [illegible] जगह नहीं रह सकते । या तो उन्हें आगे बढ़ना पड़ेगा अथवा [illegible] अवनति के गड्ढे में गिरना पड़ेगा । ऐसा हुए बिना नहीं रहेगा । [illegible] होने में इस बात का कि, हम अपने उद्देश्यों को किस उपाय [illegible] प्राप्त कर सकें, बड़ा ध्यान करना चाहिये । जो कोई भी [illegible] मार्ग से प्रत्यक्षतः अपनी उन्नति कर लेते हैं, वह वास्तव में [illegible] नहीं हुए हैं, किन्तु नीचे गिरे हैं ।

प्रकृति हमसे जिन बातों की आशा रखती है, उन्हें हम [illegible] से पूरा कर सकते हैं और उन्हीं में हमारी भलाई है । हमारी [illegible] यही होनी चाहिये कि, हम अपना दमन कर, आत्मशासन [illegible] यही स्वराज्य है और सच्ची उन्नति यही है कि, हम [illegible] सात्विक हों और धार्मिक कार्य करें । इस उन्नति में [illegible] आवश्यकता नहीं है । इसमें पग पग पर आनन्द मिलता है, [illegible] मानना है । प्रथम और उत्तम श्रेणी मनुष्य को अपने [illegible] कार्य करने को होना चाहिये । महान पुरुष को जब मृत्यु [illegible] तुरन्त करना हो उस समय भी वह उसे कर्तव्य पालन करते हुए [illegible] पावेगी ।

कहा जाता है कि, एक बार [illegible] [illegible] कहा नहीं पाया जाता । उसका जीवन का [illegible] ही था ।

इमर्सन का कथन है—" जो कुछ हम विचारते हैं, [illegible] या जो कुछ हम विश्वास करते हैं [illegible] निरर्थक है । परिणाम के लिये मुख्य बात [illegible] [illegible] की उक्ति है 'बुद्धिमत्ता कहां मिलती है' [illegible] कहते हैं [illegible] [illegible] में नहीं है । [illegible]

या जवाहरात के मोल नहीं मिलते । ईश्वर का भय करना ही बुद्धिमत्ता है और बुराई से बचना ही विवेक है । "

सच्चे और ईमानदार बनो । मन्यता सर्वश्रेष्ठ नीति है और कहता है कि " सत्य ही सब से बड़ी चीज़ है, जिसको कि, मनुष्य अपने पास रख सकता है । "

प्लूटार्क का कथन है—" जो झूठ बोलता है, वह इस बात को प्रमाणित करता है कि, वह ईश्वर की परवा नहीं करता, परन्तु लज्जा से भूल को ग्रहण न करो । "

मैक्समूलर का कथन है—" अगणित गुण ऐसे हैं जिनका प्राप्त करना मनुष्य बनने के लिये आवश्यक है, या यों कहिये कि मनुष्य-जीवन की सार्थकता ही उन गुणों को प्राप्त करने में है । परन्तु एक गुण ऐसा है जो परमावश्यक है, जिसके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं, कोई भी बड़ा जीवन जिससे शून्य नहीं रहा है । जिसके बिना कोई बड़ा काम कभी नहीं हुआ, वह गुण सत्य है, सत्य भीतरी भागों में है । सब बड़े पुरुषों और अच्छे पुरुषों की ओर देखो । हम उनको बड़ा और अच्छा किस कारण कहते हैं क्योंकि वे सत्यपूर्ण होने का साहस रखते हैं और जो कुछ होते हैं, उन्हें वैसा रहने का साहस होता है । "

शेक्सपियर का वचन है " जिसका अपने प्रति सत्य व्यवहार होता है । वह किसी से असत्य नहीं बोलता है । "

वर्ड्सवर्थ का वचन है—" दो बातें देखने में तो परस्पर विरुद्ध मालूम होती हैं, परन्तु साथ ही साथ चलती हैं—पुरुषोचित स्वच्छन्दता और पुरुषोचित पराधीनता, पुरुषोचित आत्मावलम्बन और पुरुषोचित परावलम्बन । "

आज्ञा पालन करना सीखो और तुम जान जाओगे कि कैसे दी आज्ञा करनी है। व्यायाम करना मन और शरीर दोनों के स्वस्थ करने के लिये अच्छा है। कोई खराब सिपाही कभी अच्छा जनरल नहीं बन सकता।

लोकोक्ति है—" यदि तुम्हें सफलता प्राप्त हो जाये तो घमंड को पास मत फटकने दो। घमंड नाश के आगे आगे चलता है, वैसे ही दुर्दान्त स्वभाव अधःपतन के पहिले।"

यदि तुम अपने को दुःस्वभाव बनाओगे और बुरे विचार मन में लाओगे तो तुम अपने हृदय में एक दैत्य पालोगे। वह दैत्य ही निर्दय होकर तुम्हारे हृदय का आनन्द और शान्ति हरण कर लेगा। तुम्हारे हृदय को द्वेष, घृणा, कृतघ्नता, क्रोध, चिन्ता और मन से परिपूर्ण कर देगा और अन्त में तुम्हारे आत्मा और शरीर को नष्ट कर देगा।

यदि तुम्हें अधिकार मिला है तो सावधानी से न्याय और शिक्षा को काम में लाओ। शेखसादी लिखते हैं कि, एक पुराने बादशाह ने एक निर्दोष व्यक्ति को वध किये जाने की आज्ञा दी। उस आदमी ने कहा, " ऐ बादशाह ! आपने जो यह मुझे दण्ड दिया है क्षण मात्र ही का दुःख सहन करना पड़ेगा, परन्तु तुमको यह पाप सर्वदा के लिये लग जायगा।"

शक्ति या अधिकार के साथ साथ ज़िम्मेदारी आती है। जिस दशा में भी यह कार्य या तुमको करना पसन्द हो, न करो। जिस बात को तुम्हें करना चाहिये। आनन्द प्राप्त करने का यही मार्ग है।

यदि इस बात का सन्देह हो कि, तो अमुक कार्य है ... अधिकार किया जाय तो मानो मर्यादा का उल्लंघन ...

इस प्रकार दूसरा दुःख भी अपने [illegible] का ध्यान नहीं किया करते, किन्तु [illegible] की भांति [illegible] । [illegible] चाहिये ।

धर्म के लिये हम इस संसार में कुछ कष्ट उठाने पड़ते हैं । इस काल में हम [illegible] अपने को [illegible] कर सकते हैं । [illegible] पाप के [illegible] के विरुद्ध में [illegible] किया करते हैं । परन्तु [illegible] दण्ड [illegible] देता है [illegible] हम पाप ही करने से दण्ड देते हैं । [illegible] का यह नियम है कि धर्म से आनन्द और पाप से दुःख [illegible] पड़ता है । पाप करके दुःख न मिलने से प्रकृति का नियम [illegible] होता है ।

किसी अपराध के क्षमा किये जाने से यह नहीं हो सकता कि [illegible] के दण्ड से हम बच सकेंगे । जिनको तुमने दुःख पहुँचाया है, [illegible] वे तुमको क्षमा भी कर दें, तो वह तुम्हारे सिर पर आग [illegible] के समान है, क्योंकि उनकी उदारता से तुम्हारे अपराध की [illegible] बढ़ती है ।

सदाचार ही जीवन है । सुख सम्पत्ति सदाचार पर ही निर्भर है । बातों बातों से काम नहीं चलता । जो कुछ हम हैं, काम से ही चलेगा । नित्यप्रति अपना निरीक्षण करते रहो । आदत [illegible] प्रकृति है । कोई काम करते रहो, तो तुम्हें उसकी आदत पड़ जायगी और आदत पड़ जाने पर उससे ही तुम्हारा चरित्र बनेगा । उस चरित्र से तुम्हारी प्रारब्ध बन जायगी । हम सब प्रतिदिन कुछ न कुछ काम करते हैं—चाहे बुराई में पड़ें, चाहे भलाई में । रात को शय्या पर लेट कर, हम को अपनी जाँच करनी चाहिये ।

एमर्सन का कथन है—" मनुष्य जाति दो भागों में विभाजित है । एक भाग तो उपकारी समूह का है और दूसरा अपकारी समु-

दाय का है। अपकारी अपने मित्रों को शत्रु, उनकी मृति दो... जनक, जीवन को शोकमय, दुनिया को जलखाना और... भयङ्कर बना लेते हैं। इसके विरुद्ध यदि तुम किसी के हृदय में विमल और उत्तम विचार प्रविष्ट करा सको या किसी के जीवन का एक घंटा भी आनन्ददायक बना सको, तो स्मरण रखो कि... देवतुल्य कार्य्य किया।"

कैसा अच्छा हो कि कोई मनुष्य प्रतिदिन घंटा या... एकान्त में बैठ कर शान्ति के साथ अपने कर्त्तव्यों पर विचार किया करे। यह कह देना कि, ऐसे कामों के लिये अवकाश नहीं है, असत्य है।

यदि तुम अच्छी बातों पर विचार किया करो तो तुम बुरे कार्य्यों से बच जाओगे। सर वाल्टर रेले की उक्ति है—जो पुरुष मृत्यु, ईश्वरी न्याय, स्वर्ग और नरक का बहुधा विचार करता है (उसका जीवन बुरी बातों से बचा रहता है और इस लिये) वह शान्तिपूर्वक मरता है।" युवावस्था में जो सचरित्र रहता है, वही कुछ करता है। बुढ़ापे में जब हमारी हड्डियों पर मांस तक न रहेगा तब तो हम सब ही नितान्त धार्मिक बन जावेंगे।

युवावस्था में सदैव परमेश्वर का स्मरण करना चाहिये। हमें अपने कर्त्तव्य में तत्पर रह कर जीवन बिताना चाहिये। नेक आदमी को मृत्यु भयानक नहीं है।

मिसरो का कथन है—"जब सुकरात को मृत्यु-दण्ड दिया गया तब सुकरात की दशा एक प्राण-दण्ड पाये हुए प्राणी की सी नहीं थी, किन्तु स्वर्ग-आरोहण करने वाले की भांति थी।"

सेनेका का प्रश्न है—"यदि तुम अपना कर्त्तव्यपालन वीरता और उदारता के साथ करोगे तो तुम्हें क्या लाभ होगा?" ...

कार ही इतना देता है कि, भलाई ! सदा भलाई ! आवश्यकता ! भलाई का बदला ही यह कहा जाता है । " हमको सदाचार में प्रवृत्त होने के लिये यह नहीं सोचना चाहिये कि, इससे हमको यह इनाम मिलेगा, किन्तु इस से आनन्द ही होगा समझकर करना उचित है । अच्छा काम करने से जो आत्मा को सन्तोष होता है, वह स्वयं ही बड़ा आनन्द है ।

ऐसी अवस्था पुरस्कार व्यर्थ ही है, वास्तव में शुद्ध मनुष्यों को सद्गुण की प्राप्ति और सबका भला कर जाना आवश्यक है, जिससे वे बुरे कामों के करने से बचे रहें । सिनेका कहता है— " जो मनुष्य विषयों में फँसा हुआ है, वह पाप कीचड़ में न आवे किन्तु बच जावे, यदि उसको नरक यातना का भय न हो । वह (परलोक के) बुरे कामों से डरता है और ईश्वरीय आज्ञा का पालन करता और अपनी इच्छा के विरुद्ध ऐसी बातें करता है कि, उसके नेक कर्मों का अच्छा फल परमेश्वर से प्राप्त होगा । "

जो वास्तविक बुद्धिमान हैं, वे शुभ कर्म का बदला सुख ही नहीं मानते, किन्तु वे शुभकर्म ही को सब कुछ समझते हैं । यद्यपि यह बात सत्य है और इस पर चलना भी कठिन है, तो भी यह स्मरण रखना चाहिये कि, जो वस्तु उत्तम होती है, वह अप्राप्य हुआ करती है ।

हम इस बात को जानते हैं कि, हम सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकते परन्तु हमारा यत्न यही रहे कि, हम पूर्ण सच्चरित्र हों । हम सब अपने जीवन-चरित्र का मूलोच्छेदन कर डालते हैं । यदि हम अपने अन्तःकरण का अनुसरण करें, तो बहुत भूल न करें । सदैव अपने सन्मुख सर्वोच्च आदर्श रक्खो ।

सर वाल्टर स्काट ने मरते समय लाकहार्ट से यह कहा था— " सच्चरित्र बनो, धार्मिक बनो, नेक पुरुष बनो । जब तुम मृत्यु

शय्या पर होंगे, तब शुभ कर्मों के सिवाय और कोई वस्तु शान्ति प्रदान न कर सकेगी।"

बलाम नामक एक महात्मा ने इच्छा की थी—"मैं एक सच्चरित्र पुरुष की मृत्यु प्राप्त करूँ और मेरा अन्तिम उद्देश भी समान ही हो।"

ईख की चीनी का व्यापार

हमारे देश में ईख की खेती बहुत दिनों से होती आती है। यहाँ तक कि और देशों के निवासी जब शक्कर का नाम तक नहीं जानते थे, तब भी हमारे यहाँ की मिठाई प्रसिद्ध थी। आज कल के उन्नत देशों ने शक्कर के व्यवहार को कुछ बढ़ा लिया है। ईख की खेती तथा उसकी बनी शक्कर का व्यापार उन्होंने बहुत कुछ उन्नत किया है। हमारे भारत में आज कल यह चिन्ता उपस्थित हुई है कि, हमारे देशी शक्कर के व्यापार को विदेशी शक्कर ने बहुत दबा लिया है, इसलिये ऐसे उपाय काम में लाने चाहिये जिनसे देशी शक्कर की गिरती हुई दशा सुधरे और भारतवासी देशी शक्कर का व्यवहार हर्ष पूर्वक करें।

हमारे देश में ईख भी उपजती है और शक्कर भी बनती है, परन्तु वही पुराने ढङ्ग से भारतवासी किसान अपनी पुरानी चाल के कोल्हू में बैल बाँध कर चलाते हैं। उस रस को बड़ी बड़ी पुरानी कढ़ाइयों में रख कर गर्म करते हैं और गुड़ बना कर शक्कर बनाते हैं। वही अपनी पुरानी चाल चलते हैं। उनकी विद्या और ज्ञान के केन्द्र में इससे अधिक और कुछ नहीं आता। पश्चिमी देशों में बड़े बड़े विद्वान् इस विषय पर विचार करते रहते हैं, उन्होंने अपने बड़े यन्त्र और कलों के द्वारा अपने देश को बहुत कुछ धनाढ्य किया है।

[illegible] की इस धास की अधिकता बताती है कि, चीन देशी [illegible] निकालता है, जिससे शक्कर बनाने में कुछ कम पड़े [illegible] आवश्यकता होता है। यहाँ के रसायन शास्त्र के ज्ञाताओं से [illegible] अधिकांश यही मत है कि, इसकी चुकन्दर से शक्कर [illegible] होगी। इसका व्यापार [illegible] ही उन्नत अवस्था में है। [illegible] में यह शक्कर बहुत आती है। इसका विशेष भारत की शक्कर [illegible] बहुत कम है और यह शुद्ध भी नहीं है। दरिद्र भारतवासी [illegible] भाव की सस्ती [illegible] से इसी शक्कर से अपनी इच्छा पूर्ण कर लेते हैं।

कुछ भी हो, चुकन्दर की शक्कर के आगे ईख की शक्कर का टिकना कठिन है। क्योंकि दुनिया भर में जितनी शक्कर पैदा होती है, उसमें दो तिहाई शक्कर चुकन्दर की होती है। केवल एक तिहाई गन्ने की। यद्यपि गन्ने की शक्कर चुकन्दर की शक्कर से सस्ते दामों तैयार हो सकती है, तथापि इसमें से उतना अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता। इसी कारण गन्ने की शक्कर का व्यापार मन्द पड़ गया है।

यूरोप के बड़े राज्यों ने अपनी ओर से रुपये देने की सहायता देकर चुकन्दर से शक्कर बनाने के कारखाने खुलवाये थे। ये कारखाने अधिक उन्नत हुए। इनकी संख्या इतनी बढ़ी कि, यूरोप के राज्यों को इनके लिये रुपया देने में कठिनता बोध होने लगी। इस विषय पर विचार करने के लिये ब्रूसेल्स नगर में एक सभा बैठी जिसमें सब राज्यों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि, सब राज्य चुकन्दर के कारखाने वालों को सहायता देना बन्द कर दें।

इङ्गलैण्ड और भारत यही दो देश थे कि, जहाँ इस चुकन्दर की शक्कर का व्यापार चल सकता था। इस सभा में इङ्गलैण्ड

की गवर्नमेन्ट को भी मिलना आवश्यक समझा गया। और इटली की गवर्नमेण्ट इस सभा में शामिल होना नहीं थी। इङ्गलैण्ड की गवर्नमेण्ट से कहा गया कि, वह उस देश शकर पर, जहाँ की गवर्नमेण्ट शकर के कारखानों को मदद करती है, अपने देश में अधिक कर लगाकर, अन्त में इङ्गलैण्ड की गवर्नमेण्ट इस बात पर सहमत हो गयी, ऐसा करने से शकर का भाव देशों में एक सा हो गया।

सन् १९१३ ई० में अंगरेज़ों ने देखा कि शकर बनाने के भारत सब से अच्छी जगह है और उन्होंने अँगरेज़ी रुपया कर कई कारखाने खोल दिये जो अब तक जारी हैं। स्थिति में ऐसा कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि, गन्ने चुकन्दर से बनी शकर का मुकाबला न कर सकती हो, गन्ने की शकर सस्ते दामों में बन सकती है।

कुछ लोगों की राय है कि, जावा की शकर के आगे भारत की शकर टक्कर नहीं खा सकती ब्रसल्स की सभा से पहिले बरसों के कारण शकर का मूल्य बहुत घटता बढ़ता रहता था, परन्तु अब वह बात नहीं रही। अब तमाम दुनिया में शकर का भाव एक ही सा है। गन्ने की शकर का व्यापार पिछले कई सालों से लगातार बढ़ रहा है। सन् १९०३-०४ में ४३ लाख ६६ हज़ार ६०० टन शकर बनायी गई थी। सन् १९०४-०५ में एक करोड़ १८ लाख ४० हज़ार टन शकर बनी और १९०७ में संख्या बढ़कर १ करोड़ २० लाख टन पर पहुँची।

दुनिया भर में शकर का व्यापार खूब बढ़ रहा है। १ करोड़ ३० लाख टन कुल शकर बनती है। चुकन्दर की शकर ७ पौंड १० शिलिङ्ग फी टन के हिसाब से तैयार होती है और ८ पौंड फी टन

[illegible] से दिखती है। परन्तु मशीन की तरह [illegible] और इसके [illegible] से [illegible] हो सकती है। [illegible] [illegible] की हम के हिसाब से मशीन की तरह पैदा हो सकती [illegible] बहुत सी सकती है। [illegible] [illegible] के लिये [illegible] [illegible] के कारण [illegible] में [illegible] का हिसाब से पैदा हो सकती है। [illegible] [illegible] भी [illegible] है।

पर मुनाफ़ा का लालच मशीन का [illegible] या मुनाफ़ा नहीं कर [illegible] ऐसे मुनाफ़े को कमा हुआ भी [illegible]। मुनाफ़ा के [illegible] काम में [illegible] नहीं चाहते हैं, न इसका ही अपने ऊपर [illegible] देने से बाहर [illegible]।

कारखाने के मजदूरों से बहुत [illegible] मिलकर काम करने [illegible] नहीं सकते हैं। वे [illegible] और [illegible] में [illegible] हैं। [illegible] [illegible] लाभ होता है तब उनके [illegible] यह समझते हैं कि [illegible] हमने [illegible] में लगाया है [illegible] [illegible] न मिलेगा। इसी लिये [illegible] [illegible] कर बैठते हैं।

हमारे देश के लिये चाहे जैसे कारखाने क्यों न हों, उनमें [illegible] मिल के [illegible] ही से अब काम चलेगा। [illegible] के कारखाने वाले यह समझते हैं कि कारीगरों के रखने में [illegible] अधिक पड़ेगा। इससे यह [illegible] और पुराने तरीके से [illegible] करने वाले कारीगरों को रख लेते हैं, जिसका फल यह होता है कि काम [illegible] तरह नहीं चलता और लाभ के बदले हानि होती है। कारखाने टूट जाते हैं। ऐसे लोग और लोगों का भी [illegible] देते हैं। एक और भी बात है कि, पुरानी [illegible] [illegible]

आविष्कृत कलों से कुछ सस्ती पड़ती हैं, परन्तु इसका सन्तोषजनक नहीं निकलता है। बहुतेरे कारखानों में पहले पुरानी कल चलायी जाती हैं। पर ठीक काम न चलाने बदलना पड़ता है। एक ऐसे ही कारखाने को दो वर्ष हज़ार रुपया की लागत लगाकर नई मैशीनें मँगानी पड़ी थीं।

सारांश यह है कि, भारत में ईख की शक्कर बनाने के खोलने के लिये बड़ी सुविधा है। उसके लिये नये तथा इस विद्या के शिक्षित पुरुषों की आवश्यकता है।

वीर बालक अभिमन्यु

अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र था। उसकी माता का नाम सुभ था। यह प्रकृतिसिद्ध नियम है कि, माता पिता के उत्तम होने सन्तान भी उत्तम होती है। अतः जब अर्जुन महाबलवान् पराक्र और दिव्य शस्त्र योद्धा थे और सुभद्रा भी बड़ी गुणवती थीं, अभिमन्यु सा योग्य पुत्र होना ही चाहिये था। अभिमन्यु ने म भारत युद्ध में जैसी वीरता और युद्ध कुशलता दिखाई थी, वीरों को भी आश्चर्य में डा[illegible] वाली, कायरों के शरीरों के [illegible] योद्धाओं में तेजस्विता लाने [illegible] का दाता अभिमन्यु सा पुत्र [illegible] के तरुणावस्था वाले बालक ने अपने पिता और परिवार के [illegible] कर्त्तव्यपालन करते करते अपने जीवन का अन्त किया, वह सदै बार धन्य है।

बालक अभिमन्यु का जीवन-चरित्र स्वर्णाक्षरों में लिख हुआ भारत के घर घर में रहना चाहिये और बालकों व युवक

[illegible] रामायण और [illegible] ग्रन्थों का अनुशीलन करना चाहिये। अभिमन्यु के [illegible] का पूर्ण [illegible] महाभारत [illegible] करने [illegible] हो सकता है, [illegible] करने [illegible] और आपको [illegible] चकित रहते हैं। यदि [illegible] अभिमन्यु के [illegible] पर [illegible] जाते हैं। [illegible] कि अभिमन्यु ने धनुर्विद्या में ऐसी निपुणता प्राप्त की थी कि, रणभूमि में इस विद्या के दिखाने का अवसर आया, तब उसने अपने पिता अर्जुन के सामने ही अपने को धनुर्धारी और [illegible] सिद्ध किया। महाभारत का युद्ध [illegible] पर तेजस्वी अभिमन्यु [illegible] दुर्योधन की सेना इस प्रकार अपने बाणों से [illegible] लगा था, जैसे बादल आकाश से पानी की वर्षा करता है। जैसे वायु रुई के ढेर को तितर बितर कर देता है, वैसे ही दुर्योधन की सेना को तितर बितर करने लगा था। संजय ने धृतराष्ट्र को रणभूमि की खबर सुनाते हुए कहा था—"और पतङ्ग [illegible] होकर, जलती अग्नि को नहीं सह सकता, वैसे ही तुम्हारी सब सेना अभिमन्यु के बाणों को न सह सकी। और मतवाला हाथी कमलों से भरे सरोवर में घुस कर कमलों को तोड़ डालता है वैसे ही अभिमन्यु तुम्हारी सेना को अपने बाणों से भग्न करने लगा।" [illegible] तो हुई उनकी धनुर्विद्या की बात, अब इनकी दिव्यास्त्रविद्या की भी बात सुन लीजिये।

युद्ध हो रहा था। अलम्बुष नामक एक वीर राक्षस ने अपने माहात्म्य (विज्ञान) के प्रभाव से तामसी माया उत्पन्न की। सारी रणभूमि में अंधकार ही अंधकार छा गया। उस समय कोई भी एक दूसरे को न देख सकता था। पार्थनन्दन अभिमन्यु ने उस अंधकार को दूर कर, भास्कर अस्त्र चलाया और उसकी माया

का नाश किया। पश्चात् अभिमन्यु ने उसे बाणों से छिन्न [illegible]। अलम्बुष ने उसी प्रकार से दूसरी अनेक भाँति की माया की। परन्तु सब दिव्य अस्त्रों के जानने वाले अभिमन्यु ने दिव्य अस्त्रों से उसकी सब माया का निवारण किया। राक्षस की सब माया निष्फल हुई, तब वह अभिमन्यु से पीड़ित हो कर, उसी स्थान पर अपने रथ को छोड़ रणभूमि से भाग गया।

रणभूमि में धीरता धारण कर, वीरता से शत्रुसेना के [illegible] करने में ना इस बालक ने कई स्थलों पर यश ही दिखाया था। एक दिन युद्धक्षेत्र में अभिमन्यु शत्रु पुत्र का [illegible] था कि, एकाएक अति पराक्रमी योद्धा जयद्रथ ने अभिमन्यु [illegible] शस्त्राघात करना चाहा, परन्तु अभिमन्यु ने ढाल पर [illegible] प्रहार रोक कर आत्मरक्षा की। इस प्रकार जयद्रथ का वार खाली गया और तलवार टूट गई। जयद्रथ रथ पर चढ़ कर, अभिमन्यु से युद्ध करने लगे। अभिमन्यु भी रथ पर चढ़ कर जयद्रथ से युद्ध करने में प्रवृत्त हुआ। इसी समय कौरव दल के बड़े बड़े योद्धाओं ने भी रथ पर चढ़ हुए अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया। इस पर भी अभिमन्यु विचलित नहीं हुआ। जैसे अग्नि सम्पूर्ण प्राणियों को जला कर भस्म करता है वैसे ही [illegible] बार अभिमन्यु जयद्रथ को पराजित करके उसकी सम्पूर्ण सेना [illegible] बाणों से विध्वंस करने लगा। इस पर कौरव दो [illegible] पराक्रमी शल्य ने अभिमन्यु की ओर एक लोहमयी शक्ति ([illegible] चलाई। जैसे गरुड़ सर्पों को पकड़ता है, वैसे ही अभिमन्यु [illegible] इस महाभयङ्कर शक्ति को हाथ से पकड़ कर निवारण किया। [illegible] पराक्रम को देख पाण्डव पक्ष के योद्धागण अभिमन्यु का [illegible] कार करते हुए सिंहनाद करने लगे।

था डटे। अभिमन्यु भी पाण्डव सेना की शोभा को बढ़ा परन्तु युधिष्ठिर को कौरव दल में चक्रव्यूह की रचना देख चिन्ता हुई, क्योंकि पाण्डव दल में चक्रव्यूह युद्ध से पूर्ण अर्जुन ही थे। सो वे दूर संशप्तक वीरों से लड़ रहे थे। ने महाराज युधिष्ठिर को विशेष चिन्ताग्रस्त और दुखित कहा—"मैं चक्रव्यूह में प्रवेश करना जानता हूँ। परन्तु की क्रिया पिता जी ने मुझे नहीं सिखायी।"

इस पर भीम आदि महाबली और पराक्रमी योद्धाओं ने कि, हम तुम्हारे पृष्ठरक्षक रहेंगे और बराबर तुम्हारे साथ चलेंगे।

निदान पराक्रमी बालक अभिमन्यु दुर्गम चक्रव्यूह में करने के लिये और द्रोणाचार्य्य से युद्ध करने को उद्यत और वीर-आवेश से अपने सारथी को आज्ञा दी कि, मेरा द्रोणाचार्य्य के सम्मुख ले चलो।

सारथी ने हाथ जोड़ कर विनय की—"कुमार! आपकी किशोरावस्था है, आप विचार कर ऐसे भीषण कार्य्य में तत्पर हों।"

अभिमन्यु ने वीरोचित दर्प के साथ कहा—"मुझे न तो द्रोणाचार्य्य और न सम्पूर्ण कौरव दल से भय है। मैं देवताओं सहित ऐरावत आरूढ़ इन्द्र से भी युद्ध कर सकता हूँ। और तो क्या, मैं असाधारण शक्तिशाली अपने मामा श्रीकृष्ण और अपने विश्वविजयी पिता अर्जुन से भी युद्ध कर सकता हूँ।"

युधिष्ठिर ने अभिमन्यु में चक्रव्यूह में प्रवेश करने की शक्ति देख कर कहा—"हे अभिमन्यु! हम लोग नहीं जानते कि, चक्रव्यूह का किस प्रकार से भेद किया जाता है। तुम ऐसा उपाय करो कि, अर्जुन आकर हम लोगों की निन्दा न करें। अर्जुन, कृष्ण,

जाता और गुरु द्रोण के अतिरिक्त और कोई भी चक्रव्यूह के तोड़ने को जानते नहीं हैं।

"अभिमन्यु! तुम पिता, मातुल और इन समस्त देवताओं को प्रसन्न करो। तुम आज ही अपना शस्त्र उठाकर चक्रव्यूह को भेद कर नष्ट करो। ऐसा करने से अर्जुन लौट कर देवताओं के सामने हम लोगों की निन्दा न करेंगे।"

अभिमन्यु बोले—मैं युद्धभूमि में अपने पिता के लिये [illegible] को भेद कर प्रवेश करूँगा और इस चक्रव्यूह को तोड़ूँगा। परन्तु ऐसा कि मैं इसमें जाना हूँ, पिता ने मुझे केवल भेद करने की ही विधि सिखलाई है, उस व्यूह से बाहर होने की विधि नहीं। इसलिये यदि वहाँ पर कोई विपत्ति आ जावे तो मैं उस व्यूह के भीतर से निकल नहीं सकूँगा।"

चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि को नहीं जानने के कारण ही [illegible] अभिमन्यु का अन्त में [illegible] हुआ।

तब युधिष्ठिर ने कहा—हे तात! तुम देवताओं में श्रेष्ठ हो, [illegible] को भेद में हम लोगों के प्रवेश करने का मार्ग बना दो, जिस मार्ग से तुम जाओगे, हम लोग भी उस ही मार्ग से पीछे पीछे गमन करेंगे। हे पुत्र! तुम युद्ध में अर्जुन के समान हो, इसलिये हम लोग तुम्हारे पीछे [illegible] तुम्हारी रक्षा करते हुए शत्रुओं के सैनिकों से युद्ध करेंगे।"

[illegible] अभिमन्यु ने अपने सारथी से कहा—[illegible]। तब अभिमन्यु के [illegible] युधिष्ठिर की आज्ञा [illegible] हुआ। उस समय वीर बालक अभिमन्यु [illegible] बोले [illegible]

थे जैसे कि सिंह का किशोर अवस्था का बच्चा हाथियों के झुण्ड पर आक्रमण करने को उद्यत हो। सुवर्णभूषित कवच और सुन्दर ध्वजा से युक्त वीर अभिमन्यु द्रोणाचार्य्य आदि महारथी वीरों पर आक्रमण करने में प्रवृत्त हुए। कौरवदल के योद्धा अभिमन्यु को चक्रव्यूह में प्रवेश करते देख वीरोचित आवेश से युद्ध करने लगे। पाण्डव लोग अभिमन्यु की रक्षा करते हुए पीछे गमन करने लगे। अभिमन्यु को द्रोणाचार्य्य की सेना में प्रवेश करते समय महाभयङ्कर तुमुल युद्ध हुआ। इसी समय अभिमन्यु ने द्रोणाचार्य्य के सम्मुख ही व्यूह भेद कर, शत्रु सेना में प्रवेश किया। अभिमन्यु के लिये यह समय घोर सङ्कट का था। चारों ओर से शत्रु उनको मारने के लिये घेर रहे थे, तथापि अभिमन्यु चक्र चले भाव से युद्ध करने में तत्पर थे। इस समय अभिमन्यु ने अपूर्व वीरता दिखाई। अपने बाणों से शत्रुओं को व्याकुल कर दिया। कौरव तथा उनके पराक्रमी योद्धा पाण्डवों के जीतने में उत्साह रहित हो गये और चकित होकर दसों दिशाओं को देखने लगे। उन सबकी हिम्मत टूट गयी और अपने अपने प्राण बचा कर भागने लगे।

राजा दुर्योधन सुभद्रापुत्र अभिमन्यु के सम्मुख से अपनी सेना को भागती हुई देखकर, रथ पर चढ़ कर अभिमन्यु की ओर दौड़े। अनन्तर द्रोणाचार्य्य दुर्योधन को अभिमन्यु के सम्मुख जाते देखकर सम्पूर्ण राजाओं से बोले—"जाओ, अभिमन्यु से लड़ते हुए राजा दुर्योधन की रक्षा करो।" इस पर कौरव दल के सब बड़े बलवान् योद्धा अभिमन्यु के सम्मुख खड़े हुए। द्रोणाचार्य्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, महाराज शल्य, भूरिश्रवा, पौरव और वृषसेन आदि पराक्रमी योद्धा अभिमन्यु अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके अभिमन्यु को बाणों से छिपाने

गये। किन्तु तो भी अभिमन्यु पूर्वोक्त प्रकार से सबसे युद्ध करते ही रहे। तदनन्तर सम्पूर्ण महारथियों ने चारों ओर से घेरे हुए सहसा ही अभिमन्यु को घेर कर उनके ऊपर नाना भाँति के बाणों की वर्षा की; किन्तु वीरवर अभिमन्यु ने अपने पराक्रम से प्रेरित होकर ही महारथियों को आगे नहीं बढ़ने दिया। अभिमन्यु ने ऐसा पराक्रम प्रकट किया कि एक बार फिर भी कौरव सेना को पीछे हटा दिया।

कर्ण, अश्वत्थामा, दुःशासन बराबर अभिमन्यु को घेरे हुए लड़ रहे थे; परन्तु अभिमन्यु बाणों से बिद्ध होकर भी विचलित नहीं हुआ; किन्तु वह क्रुद्ध होकर प्राणघाती यमराज के समान सम्पूर्ण सेना के बीच घूमता हुआ दिखाई देता था। दुःशासन भी उन महापराक्रमी वीर अभिमन्यु के मर्मभेदी बाणों से व्याकुल होकर रथ का धुरा पकड़ कर और मूर्छित होकर बैठ गये। दुःशासन की यह दशा देखकर योद्धा लोग रणभूमि से ऐसे भागने लगे जैसे सिंह से पीड़ित होकर मृगों का समूह भागता है।

अभिमन्यु ने दुःशासन को अत्यन्त क्रोध पूर्वक अपनी ओर आते हुए देखकर बाण-वर्षा से उन्हें विकल किया। क्रोधी दुःशासन काले हाथों के समान इस रणभूमि में अभिमन्यु के साथ युद्ध करने लगा। अभिमन्यु हँसते हुए दुःशासन से बोला—"चाचा! तुम बड़े क्रोधी, निष्ठुर और धर्मत्यागी हो। तुमने ही महाराज धृतराष्ट्र के सम्मुख धर्मराज युधिष्ठिर को कड़ी बातों से कुपित किया था। तुम उस सम्पूर्ण अधर्म का फल शीघ्र ही पाओगे। आज मैं रणभूमि में कृष्ण और अर्जुन के क्रोध को शान्त करके और उनकी अभिलाषा पूर्ण करके ऋण-रहित होऊँगा। आज मैं इस युद्ध में कौन्तेय के भी ऋण से मुक्त होऊँगा। यदि तुम यहाँ से डरकर न भाग जाओगे तो, याद रखो, जीते न रहोगे। यह

अभिमन्यु का बालभाषण न था, किन्तु उसने महान वीरभाव से ऐसा कहा था। इस समय ऐसा युद्ध हुआ कि कितने ही गुरु योद्धा अभिमन्यु के तीक्ष्ण अस्त्रों से क्षत विक्षत शरीर होकर अपने जीवन की रक्षा के निमित्त ऐसे व्याकुल हुए कि घबराहट में अपनी ओर के योद्धाओं ही का वध करते हुए अभिमन्यु के पास से भागने लगे। अन्त में दुर्योधन भी अभिमन्यु के बाणों से पीड़ित होकर युद्धभूमि से विमुख हुआ।

कौरव दल के अनेक योद्धा पाण्डव दल को जीतने से निरा होकर, अपने मरे हुए भाई बन्धुओं को रणभूमि में छोड़ कर भा गये। उनको भागते देखकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्था कर्ण, बृहद्बल, दुर्योधन, कृतवर्मा और शकुनि अत्यन्त क्रुद्ध हो अभिमन्यु के सम्मुख आ युद्ध करने लगे। परन्तु धन्य है अभिम को कि इतने महारथियों के सामने युद्धभूमि में वीरतापूर्वक यु करता हुआ वह डटा ही रहा। अपने युद्धकौशल और हस्तला के कारण अभिमन्यु ने ऐसी बाणवर्षा की कि फिर सबको दू कर दिया। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अपने बालस्वभाव अभिमान के कारण अभिमन्यु से भिड़ गया, परन्तु अभिम ने उसकी कम अवस्था का विचार कर कहा—'आओ, मैं अ परन्तु जब वह न माना और दर्प की बात कह युद्ध करने ल तब अन्त में अभिमन्यु ने यह कह कर कि "तुम इस समय संसार को भली भाँति देख लो, तुम अभी यमपुरी जाते हो" एक बाण अभिमन्यु ने ऐसा चलाया कि [illegible] लक्ष्मण का सिर कट कर गिर पड़ा। [illegible] लक्ष्मण के हुआ देख कर सब लोग हाहाकार करने लगे। इस समय दु धन ने प्यारे पुत्र लक्ष्मण के लिये बड़ा विलाप और शोक प्र किया।

इस प्रकार पर दुर्योधन और दुःशासन के पुत्र के मारे जाने पर क्रोधित होकर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कर्ण और कृतवर्मा इन छः महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया। इस समय अभिमन्यु ने ऐसा घोर युद्ध किया कि जिसका वर्णन किसी प्रकार किया ही नहीं जा सकता। शत्रु दल के प्रधान योद्धा द्रोणाचार्य भी वीर बालक अभिमन्यु की प्रशंसा करते हुए कहने लगे। द्रोणाचार्य कहने लगे धनुर्धर अभिमन्यु का हस्तलाघव देखकर बार बार धन्य कहने लगे। द्रोणाचार्य की प्रशंसा से दुर्योधन और कर्ण आदि अभिमन्यु के अलौकिक युद्ध-कौशल देखे हो सकता है?

अभिमन्यु के बाण से पराक्रमी लक्ष्मण मारा गया। अभिमन्यु ने व्यूह के भीतर प्रवेश करके अपने प्रचण्ड बाणों से सम्पूर्ण सेना का संहार किया। अश्वत्थामा को बाणों से घायल कर उसने कर्ण के हाथ से धनुष को काट दिया। कृपाचार्य के रथ के घोड़े, पृष्ठरक्षक और सारथी को मार कर, दस बाणों से उनके हृदय में प्रहार किया। फिर अनेक युद्धलीला करके अभिमन्यु ने दूसरे महारथियों की ओर क्रोधयुक्त दृष्टिपात किया। उसने एक बाण से शत्रुञ्जय, चन्द्रकेतु, महावेग, सुवर्चा और सूर्यभास वीरों का वध करके उसने अपने बाणों से शकुनि को विद्ध किया।

कर्ण अभिमन्यु की बाणवर्षा से घबड़ा कर कहने लगा—"मैं इस रणभूमि में ठहर नहीं सकता; परन्तु रणभूमि से भागना अनुचित काम है इसलिये मैं डटा हुआ हूँ।" द्रोणाचार्य बोले—"कर्ण घबराओ मत। इसमें सन्देह नहीं कि यह बालक बड़ा पराक्रमी है। यदि तुम लोग अपने बाणों से इस वीर बालक के धनुष का रोदा काट कर घोड़े, सारथी और पृष्ठरक्षक वीरों का वध कर

सको तो बहुत अच्छा हो। फिर इसे रथरहित करके इस पर प्रहार करना ठीक होगा। जब तक अभिमन्यु के हाथ में धनुष है, तब तक कोई देवता या राक्षस इसका वध न कर सकेगा।"

द्रोणाचार्य के इन शब्दों से कर्ण का उत्साह बढ़ गया। अभिमन्यु एक साथ छः महारथियों से युद्ध करते करते थक गया था, तो भी अद्भुत युद्ध कौशल दिखाया करने लगा। कर्ण ने अभिमन्यु के धनुष को अपने बाण से काट गिराया। घोर युद्ध होने पर भोज ने अभिमन्यु के रथ के चारों घोड़े, कृपाचार्य ने उसके पृष्ठ-रक्षक योद्धाओं और सारथी का वध किया। फिर तो कायरों में भी सम्मुख युद्ध करने की हिम्मत आ गयी। छः महारथी युद्ध नियमों के विरुद्ध अस्त्र शस्त्र-रहित अभिमन्यु पर बाण वर्षा कर रहे थे। परन्तु धन्य है अभिमन्यु को कि, इन सब बातों के होते हुए भी रणभूमि से भागने या पीछे हटने का विचार तक भी उसके मन में न आया। वह सिंह के समान अब भी गरजता और अपनी शक्ति अनुसार पराक्रम प्रकाश कर रहा था। ऐसा ही समय सच्चे क्षत्रिय को वीरता दिखाने का हुआ करता है। यही वीरता की परीक्षा का समय था। ये अनेक दुःख प्राप्त होने पर, अनेक कष्ट झेलने पर, उत्साहहीन नहीं होते और कठ समय में अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहते हैं। वे ही प्रकृत वीर कहे जाते हैं।

धनुष टूटने पर और रथविहीन होने पर अभिमन्यु हाथ में तलवार लेकर रणभूमि में बारम्बार से फिरने लगे। कायर दुर्योधन कहने लगा— 'देखो देखो सारथी! [illegible] हुए अभिमन्यु दुबारा आ रहा है।' इस पर शेष महारथी-गण फिर बाण की वर्षा करके व अभिमन्यु के शरीर को बाणों से छेद डाले। इतने ही में [illegible] के पुत्र ने अभिमन्यु के सिर

[illegible] अभिमन्यु [illegible] । [illegible] अभिमन्यु [illegible] । [illegible] ऐसे ही वीर बालक [illegible] के गौरव [illegible] हुए हैं।

[illegible] अभिमन्यु [illegible] ।" [illegible] अभिमन्यु [illegible] । [illegible]

चारों ओर भ्रमण करते देख कर मुझे अत्यन्त ही आनन्द उत्पन्न [illegible]

हुआ।

अभिमन्यु ने भयङ्कर गदा ग्रहण की और वह अश्वत्थामा की ओर दौड़ा। अश्वत्थामा पीछे हट गये, परन्तु उस गदा ने अश्वत्थामा के रथ के घोड़े और पृष्ठरक्षक के सारथी का संहार किया। अभिमन्यु ने मदान्ध सिंह की भाँति सुबलराज के कुमार कालिकेय और उनके अनुयायी गान्धार देशीय योद्धाओं का वध किया। दुःशासन-पुत्र के रथ के घोड़ों को चूर कर दिया। दुःशासन पुत्र को इस पर बड़ा क्रोध आया। खड़ा रह, खड़ा रह, कह कर वह अभिमन्यु की ओर दौड़ा। दोनों अपना अपना बल विक्रम प्रदर्शित करते हुए एक दूसरे के वध करने की चेष्टा करते हुए गदाओं की चोट से पीड़ित और मूर्छित होकर इन्द्रध्वजा की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े, थोड़ी देर बाद दुःशासन-पुत्र सचेत हुआ और उठ कर खड़ा हुआ। अभिमन्यु उठने ही जाते थे कि, इसी समय दुःशासन पुत्र ने उसके सिर पर गदा का प्रहार किया। वीरवर्णीय युद्ध से क्लान्त और सन्तापित अभिमन्यु के सिर पर यह चोट प्राण घातक हुई। सिर पर गदा लगने से वह अत्यन्त रुधिर [illegible] भूतलशायी हुआ।

हमारा मुख्य कर्त्तव्य

हमें केवल यही काम करना चाहिये जिससे घर की रोटी चले और हम सुख चैन से रहें। हमें सच्चे धार्मिक की भांति दूसरों का उपकार भी करना चाहिये। अपने देश व जाति की उन्नति करना भी हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। हमें दूसरों के भला करने का विचार कभी भी नहीं त्यागना चाहिये। किसी उच्च इच्छा को दबा डालना बुरी बात है। प्रत्येक उच्च आत्मा उन्नति का यत्न करता है। प्रत्येक ज्ञानवान् पुरुष को अपने उद्देश्य उच्च रखने चाहिये। मनुष्य को धन कमाने के लिये भी परिश्रम करना चाहिये, क्योंकि धन से भी बहुत काम चलते हैं। परन्तु यह काम इतने महत्व का नहीं है कि कोई उदार हृदय पुरुष केवल इसी में तन मन से यत्नवान् रहे जीवन का मुख्य उद्देश्य यही नहीं है कि, वह रुपया कमा कर एक धनवान् पुरुष बन जावे. किन्तु धर्म्म के साथ जीवन व्यतीत करना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

किसी शुभ कार्य्य के लिये दृढ़तापूर्वक यत्न करना हमारा धर्म्म है, उसकी फल-प्राप्ति हमारे हाथ में नहीं है। फल-प्राप्ति का ध्यान रखने वाला मनुष्य बहुधा सफलता नहीं प्राप्त करता। इसलिये फल की आशा छोड़कर कर्त्तव्य कार्य्यों का करना अपना धर्म्म समझकर किये जाना चाहिये। कभी कभी छोटा सा दोष भी युवा पुरुष के समस्त जीवन का ऐसे नाश कर देता है जैसे कि, आग की एक चिन्गारी बड़े नगर को जला देती है। जिस पुरुष में बलवती इच्छा और उत्साह होता है, उस मनुष्य को एक छोटी सी बात भी किसी बड़े काम करने का उत्साह ला देती है। एक विद्वान् अङ्गरेज़ का कथन है कि, जिस विषय का बाल्यावस्था में अनुराग हो जाता है, उसी विषय में वह युवावस्था में परिश्रम

चारो ओर भ्रमण करते देख कर मुझे अत्यन्त ही आनन्द उत्पन्न हो रहा है। कोई भी योद्धा इसका तनिक छिद्र नहीं देख सकता। यह रण-कौशल में अर्जुन से किसी प्रकार कम नहीं।" बस, अभिमन्यु के अनुपम योद्धा होने की इससे अधिक और क्या प्रशंसा हो सकती है! जो बाल्यावस्था में ही ऐसा बली, पराक्रमी और युद्ध-कुशल था, वह निस्सन्देह पूर्ण युवा अवस्था में अद्वितीय योद्धा होता।

अभिमन्यु ने भयङ्कर गदा ग्रहण की और वह अश्वत्थामा की ओर दौड़ा। अश्वत्थामा पीछे हट गये, परन्तु उस गदा ने अश्वत्थामा के रथ के घोड़े और पृष्ठरक्षक के सारथी का संहार किया। अभिमन्यु ने मदान्ध सिंह की नाईं सुबलराज के दामाद कालिकेय और उनके अनुयायी गान्धार देशीय योद्धाओं का बध किया। दुःशासन-पुत्र के रथ के घोड़ों को चूर कर दिया। दुःशासन-पुत्र को इस पर बड़ा क्रोध आया। खड़ा रह, खड़ा रह, कह कर वह अभिमन्यु की ओर दौड़ा। दोनों अपना अपना बल विक्रम प्रदर्शित करते हुए एक दूसरे के बध करने की चेष्टा करते हुए गदाओं की चोट से पीड़ित और मूर्च्छित होकर इन्द्रध्वजा की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े, थोड़ी देर बाद दुःशासन-पुत्र सचेत हुआ और उठ कर खड़ा हुआ। अभिमन्यु उठने ही जाते थे कि, इसी समय दुःशासन-पुत्र ने उसके सिर पर गदा का प्रहार किया। दीर्घकालीन युद्ध से क्लान्त और क्षतशरीर अभिमन्यु के सिर पर यह चोट प्राणघातक हुई। सिर पर गदा लगने से वह चेतन रहित होकर भूतलशायी हुआ।

हमारा मुख्य कर्त्तव्य

हमें केवल यही काम करना चाहिये जिससे घर की रोटी चले और हम सुख चैन से रहें। हमें सच्चे धार्म्मिक की भाँति दूसरों का उपकार भी करना चाहिये। अपने देश व जाति की उन्नति करना भी हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। हमें दूसरों के भला करने का विचार कभी भी नहीं त्यागना चाहिये। किसी उच्च इच्छा को दबा डालना बुरी बात है। प्रत्येक उच्च आत्मा उन्नति का यत्न करता है। प्रत्येक जीवनवान् पुरुष को अपने उद्देश्य उच्च रखने चाहिये। मनुष्य को धन कमाने के लिये भी परिश्रम करना चाहिये, क्योंकि धन से भी बहुत काम चलते हैं। परन्तु यह काम इतने महत्व का नहीं है कि कोई उदार हृदय पुरुष केवल इसी में तन मन से यत्नवान् रहे जीवन का मुख्य उद्देश्य यही नहीं है कि, वह रुपया कमा कर एक धनवान् पुरुष बन जावे, किन्तु धर्म्म के साथ जीवन व्यतीत करना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

किसी शुभ कार्य्य के लिये दृढ़तापूर्वक यत्न करना हमारा काम है, उसकी फल-प्राप्ति हमारे हाथ में नहीं है। फल-प्राप्ति का ध्यान रखने वाला मनुष्य बहुधा सफलता नहीं प्राप्त करता। इसलिये फल की आशा छोड़कर कर्त्तव्य कार्य्यों का करना अपना धर्म्म समझकर किये जाना चाहिये। कभी कभी छोटा सा दोष भी युवा पुरुष के समस्त जीवन का ऐसे नाश कर देता है जैसे कि आग की एक चिनगारी बड़े नगर को जला देती है। जिस पुरुष में बलवती इच्छा और उत्साह होता है, उस मनुष्य को एक छोटी सी बात भी किसी बड़े काम करने का उत्साह ला देती है। एक विद्वान् अङ्गरेज़ का कथन है कि, जिस विषय का बाल्यावस्था में अनुराग हो जाता है, उसी विषय में वह युवावस्था में परिश्रम

करके सफलता प्राप्त करता है। उक्त विद्वान् का यह कथन सर्वथा सत्य ज्ञात पड़ता है। प्रकृति भी इस बात को प्रमाणित कर रही है। जैसा एक छोटे से बीज ही से पौधा उगता है और समय पा कर फल देता है।

नेलसन बाल्यकाल में मित्रों के सहारे से गाँव के तालाब पर खेला करता था। इस खेल से यह ज्ञात पड़ता था कि, वह समुद्र यात्रा का शौकीन है। कवि वर्ड्सवर्थ अपनी दाई से कहानियाँ सुना करता था। उन कहानियों ने उसकी स्वाभाविक कवित्व-शक्ति को जागृत कर दिया। टामस क्लार्कसन ने दास व्यापार बन्द करने के लिये बड़ा आन्दोलन किया था। उसे एक इतिहास पढ़ने से ज्ञात हुआ कि दासों के साथ बड़ी निर्दयता का बर्ताव किया जाता है। उसने अपनी बनाई पुस्तक में लिखा है कि, एक दिन वह घोड़े पर चढ़ा हुआ किसी कारखाने के सामने हो कर निकला और वहाँ पर दासों की दुर्दशा के कारण ऐसा खिन्न हुआ कि, घोड़े से उतर पड़ा और सोचने लगा कि, क्या कोई ऐसा मनुष्य नहीं जो इन दासों को दुःखों से छुड़ा सके? परन्तु केवल इस विचार ही ने उसे दास व्यापार को बन्द कराने की ओर अग्रसर नहीं किया। दया का अंकुर उसके हृदय में बाल्यकाल ही से था। इस विचार ने और भी उसका उत्साह बढ़ा दिया। ऐसे बहुत से दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

जीवन में काम काज करने के लिये मनुष्य को अपने मन की ओर ध्यान देना चाहिये कि, वह किस बात की ओर जाता है। फिर अपने मन की कामना का साथ देना उचित है। यह सत्य है कि, बाहरी कारण भी हमारे जीवन पर प्रभाव डालते हैं और कभी कभी हमारे उद्देश्य के बाधक भी हो जाते हैं। मिल्टन का कथन है कि, बचपन ही से मनुष्य का भविष्य जीवन जाना

मालूम हो जाता है जैसे प्रभात को दिवस का ज्ञान हो जाता है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि, बचपन में बच्चों को इस प्रकार रखना चाहिये जिससे उनके हृदय के भाव उच्च और पवित्र हों।

प्रत्येक वस्तु जो हमारे अच्छे भावों को बिगाड़ती हो, पृथक् रखी जाय। प्रत्येक वस्तु जो हमारी नम्रता, उदारता और चित्त की सरलता को बढ़ावे, अपने पास रखनी चाहिये। बचपन ही में बालकों के विचार ठीक किये जा सकते हैं। जो आदत बचपन में बालकों को पड़ जाती है वह बहुधा छुड़ाने से भी नहीं छूटती। जीवन भर अपना रंग दिखाती रहती है। बच्चे का हृदय मोम के सदृश कोमल होता है, उस समय उसको चाहे जिधर को फेर सकते हो। बच्चों पर घर के बड़े लोगों का प्रभाव बड़ा पड़ता है। बचपन में याद की हुई बात मनुष्य को सर्वदा याद रहती है। जिस कुटुम्ब में बच्चा पला हो उस कुटुम्ब को देखकर कहा जा सकता है कि, यह बच्चा इस ढंग का होगा। बचपन में बालक नई बात सीखने और नकल करने की अद्भुत शक्ति रखते हैं, इसलिये बालकों के सुधार का यत्न बाल्यावस्था ही से करना चाहिये।

व्यापार

संसार कर्मक्षेत्र है, इसमें सभी मनुष्यों को कुछ न कुछ काम करना पड़ता है। काम के बदले में मनुष्य धन पाता है और उससे उसका जीवन-निर्वाह होता है, इसलिये कोई नौकरी करते हैं, कोई खेती करते हैं और कोई व्यापार करते हैं। नौकरी को सब देशों में व्यापार से निकृष्ट माना है। फिर जिस देश में खेती ही का काम अधिकता से होता हो वहाँ पर तो व्यापार-प्रिय लोगों

की बड़ी ही आवश्यकता है। भारत में १०० मनुष्यों में से ७० मनुष्य खेती करते हैं। इसी से भारत कृषिप्रधान देश कहा जाता है और इससे यहां व्यापार के लिये बड़ी सुभीता है। हमारे देश में विद्या-प्राप्त करने का उद्देश्य केवल नौकरी करना ही मान रखा है। निस्सन्देह खेती और व्यापार करने वाले लोगों को भी विद्या प्राप्त करने की बड़ी आवश्यकता है।

मानव-समाज की उन्नति के साथ व्यापार की नींव पड़ी जाती है। सभ्य जाति ही व्यापार को समझती है और उस से लाभ उठाती है। व्यापार ने मनुष्य-जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है। जो लोग कच्चा मांस आदि खाकर अपनी क्षुधा निवृत्त करते थे, इस व्यापार के प्रताप ही से वे धनशाली एवं समताशाली बन गये हैं। पश्चिम के देशों की जो बढ़ती हुई उन्नति दीख पड़ती है, वह व्यापार ही के कारण है।

अङ्गरेज जाति ने व्यापार के द्वारा ही भारत के अधीश्वर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया है। व्यापार से देश के निवासियों में उद्योगशीलता कार्यक्षमता और योग्यता बढ़ती है। देश से सुस्ती काहिली और दरिद्रता विदा होती है। व्यापार से देश में प्रत्येक बात की उन्नति होती है, शांति बढ़ती है, ज्ञान बढ़ता है। अन्य अन्य देशों से आने वालों की रीति व्यवहार रहन सहन और उन्नति की बातों का अनुकरण अपने देश में प्रचार करने का अवसर प्राप्त होता है। किसी को धनवान होने के लिए व्यापार के [illegible] ही रास्ता है। [illegible] बुद्धि ही व्यापार की [illegible] है। [illegible] के देश की एक समय बड़े व्यापारी थे। इनका [illegible] सौदागर थे। वरन् [illegible] भारत में [illegible] का राज्य हुआ, वैसे ही व्यापार की शिक्षा। अशिक्षित मनुष्य के

उन्हीं गुणों को संकुचित कर देती है। महाभारत के पीछे आपस में लड़ाई झगड़ों और मुसल्मानों के हमलों से भारत के बहुत से गुण नष्ट हो गये। इधर यूरोपवासियों ने व्यापार की तन मन धन से उन्नति करने की चेष्टा की जिससे करोड़ों रुपये भारत ही से उनके घर जाने लगे। जैसे व्यापार के कारण कलकत्ता जैसा छोटा गाँव भी बड़ी राजधानी में परिवर्तित हो गया है, इसी प्रकार दरिद्र देश भी इसके द्वारा धनशाली बन जाते हैं।

एक दैनिक हिन्दी के पत्र में एक उद्धृत लेख में कहा गया था कि, जिस देश का कच्चा माल स्वदेश के काम में नहीं लाया जाता, किन्तु और देशों में भेजा जाता है और वहाँ से बन ठन कर आता है, उस देश की बड़ी हानि होती है। जैसे हम एक रुपये की रुई लेकर उसकी स्वयं मलमल नहीं बनाते, बल्कि उसको विदेशियों के हाथ बेच डालते हैं और रुपये की रुई में दो आना नफा ले लेते हैं, तो नतीजा यह होता है कि, रुपये की दो सेर रुई की दो सेर मलमल जिसका मूल्य १५) या २०) होगा हम खरीदते हैं और दो आने नफे के बदले १०) या १५) रुपये देते हैं। यही व्यापारिक-विद्या का लाभ है जिसे यूरोपवाले सीखते हैं और उसके द्वारा अपने देश को लक्ष्मी का भण्डार बनाते हैं। भारतवासियों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिये।

हमारे धनाढ्य भाई धन से काम लेना और उसकी वृद्धि करना कम जानते हैं, क्योंकि उनमें व्यवसाय-बुद्धि की बड़ी कमी है। वह लोग अपने धन को गाड़ देते हैं, जेवर बनवाते हैं या विवाहादि की फ़ुजूलखर्ची में नष्ट कर देते हैं। मिलजुल कर व्यापार करना तो जानते ही नहीं। हमारे देश के नवयुवकों को विद्या से अलंकृत हो इधर ध्यान देना चाहिये। इधर अब भी उनके लिये बहुत गुन्जायश है।

प्रत्येक मनुष्य अपने देश के व्यापार को उन्नत करने में कुछ न कुछ सहायता दे सकता है। यह चाकू या यह कपड़ा जो मैं खरीदता हूँ, इससे मेरे देश को कितना लाभ है या कितनी हानि है यह बात सब लोग समझ सकते हैं और ऐसे लोग विचार से अपने देश के शिल्पकला और व्यवसाय को बहुत लाभ पहुँचा सकते हैं। यह कभी न सोचना चाहिये कि ऐसी छोटी बात से क्या होता है या हम क्या कर सकते हैं, क्योंकि कण कण ही से मन हो जाता है। यूरोप में इसी स्वदेशी नीति के द्वारा और देशों के माल रोकने की बड़ी चेष्टा की गई और की जा रही है। इसी के द्वारा अपने देश के व्यापार को उन्होंने बहुत कुछ बढ़ाया है। क्या हम स्वदेश की बनी चीज़ें ग्रहण कर अपने देश के व्यापार को लाभ नहीं पहुँचा सकते? क्या इससे [illegible] यह सत्य नहीं कर डालेंगे कि "वाणिज्य वसति लक्ष्मी"? कला कौशल की उन्नति तब ही होती है जब देशवासी अपने देश की चीज़ों की कदर करते हैं। यदि कश्मीर के बुने दुशालों व मक्के की मलमल का आदर देशवासी कदर न करते, तो क्या विदेशी लोग करते? यदि हम अपनी देशी चीज़ों का व्यवहार छोड़ देंगे, तो नतीजा यह होगा कि हमारे बचे खुचे कारीगर भी भूखों मरने लगेंगे और देशी कारीगरी का नाम निशान भी मिट जायगा। न मालूम भारत की कितनी कारीगरी नष्ट हो गई [illegible]। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि अपनी कारीगरी की वस्तुओं को पूर्ण रूप से बनाकर [illegible] बड़ा कठिन है। इसका कारण इसका अपने देश का ही [illegible] है। अतएव स्वदेशी वस्तुओं का भारत में रहकर भी अपने देश की चीज़ [illegible] काम में लाता है। [illegible] कारण है जो यह समझते हैं कि देश की [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्रेम को बड़े लोगों ने भी बड़ा सम्मान दिया है। संसार की सब ऊँची और अच्छी बातों की जड़ यही है। स्वदेश-भक्ति, पितृ-भक्ति और हरि भक्ति सब का मूल प्रेम ही में विराजमान है। एक लेखक का कथन है कि सब दुःखों की परम औषधि और सब अभावों का पूर्णकर्ता प्रेम ही है। सर्वशिरोमणि है और इसके द्वारा संसार की सुन्दर स्वाभाविक छटा देख पड़ती है। संसार में ऐसा कोई धर्म व मत नहीं है जिसने प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति का द्वार न माना हो। निस्सन्देह प्रेम एक अद्भुत शक्ति है। इसके द्वारा संसार के बड़े बड़े काम सिद्ध होते हैं। प्रेम से ईश्वर और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

आजकल के सभ्य देशों में प्रेम का महात्म्य खूब समझा गया है। बच्चों को उन देशों में बड़े प्रेम से शिक्षा दी जाती है। उनके साथ एक सभ्य और प्रतिष्ठित आदमी का सा बर्ताव किया जाता है। उनके हृदय में प्रेम का संस्कार स्थिर किया जाता है। और स्वदेश प्रेम का बीज बोया जाता है।

प्रेम हमारे जीवन के आनन्द का कारण है। प्रेम हमारे जीवन का सच्चा साथी है। बाल्यकाल में माता पिता को प्रेम करते हैं। युवावस्था में अपनी स्त्री आदि को, बुढ़ापे में अपने पुत्र व पौत्रादिक को। सचमुच जीवन का आनन्द इस प्रेम ही से है। यदि हम में प्रेम नहीं रहता तो हमारा जीवन शुष्क रहता है। जानवरों में भी प्रेम की मात्रा होती है। परन्तु मनुष्य के हृदय में प्रेम सरोवर परिपूर्ण अवस्था में विराज रहा है।

मनुष्य-जीवन बड़ा दुर्लभ और मूल्यवान है। बहुत से आदमी इसको विषय भोगों ही में गवाँ देते हैं। वे इसकी सार्थकता को नहीं समझते हैं और न इसके कर्त्तव्य कार्य्य पूरा करते हैं। इसी

प्रकार प्रेम जो हमारा बड़ा कल्याण करनेवाला है, उसका भी कुछ लोग बहुत दुरुपयोग करते हैं। शुद्ध प्रेम वास्तव में सुखदायक है, परन्तु दुरुपयोग से मनुष्य नरक तक के दुःख उठाते हैं और प्रेम को इस प्रकार कलंक लगाते हैं। कुछ लोग किसी धनवान् को देख कर उसके मित्र बनते हैं, फिर दाँव पाकर अपना बुरा उद्देश्य पूरा कर रुपया उड़ा कर चल देते हैं। इन बातों से मित्रता और संसार की शान्ति को कितनी हानि उठानी पड़ती है। लोगों का आपस में विश्वास उठ जाता है और आनन्द छिप जाता है।

महाभारत में लिखा है कि, महाभारत-युद्ध के पश्चात् जब पाण्डव स्वर्ग को सिधारे तब साथ में एक कुत्ता भी था। स्वर्गदूत ने युधिष्ठिर को उसे साथ ले जाने से रोका। इस पर उन्होंने कहा कि, यदि हमारा कुत्ता स्वर्ग में नहीं जा सकता तो हम भी नहीं जायँगे। अन्त में इस बात पर स्वर्गदूत पछताया और श्वान के सहित वे स्वर्ग को पधारे। सारांश यह है कि, उदार-हृदय मनुष्य जिस वस्तु या जीव से प्रेम करते हैं, उससे अपना स्वार्थ निकाल कर नहीं छोड़ देते, किन्तु उससे सदैव ही प्रेम करते हैं। आजकल ऐसे प्रेम करने वाले कम देखे जाते है।

प्रेम और बुद्धि दोनों का उपयोग साथ साथ होना चाहिये। जिस काम में प्रेम और बुद्धि दोनों सहायता देते हैं, वह अवश्य सफल होता है। प्रेम हमारे हृदय-सरोवर में आनन्द रूप कमल खिलाता है और बुद्धि उस पर भ्रमर के समान पुष्प पराग का पान करती है। एक कवि कहता है कि, शान्ति में आनन्द प्रेम की वंशी बजाता है; युद्ध में घोड़े पर चढ़कर तलवार चलाता है; जिवनारों और ज्याफतों में वह अच्छे वस्त्र धारण कर विराजता है; प्रेम के राज्य का विस्तार कचहरियों, छावनियों, बाग़ बगीचों में, सर्वत्र है।

भारतवासी प्रेम रस को भूलकर रो चुके हैं, परन्तु प्रेम बिना क्या कोई जाति जीवित रह सकती है। प्रेम ही जाति, देश और समाज का सर्वस्व है। इस प्रेम के खोने से और भाई भाइयों के लड़ने से हमारी सम्पत्ति नष्ट भ्रष्ट हो गयी। अब हमारे मङ्गल के लिये, देश के कल्याण के लिये, स्वदेश को श्रीसम्पन्न करने के लिये और देश की कला कौशल की उन्नति के लिये, प्रेम की परम आवश्यकता है। हमें जब भारत का नाम प्यारा लगेगा और वह हृदय में स्थान पावेगा, तब हम फिर क्यों नहीं अपने भाई भारतवासियों को प्रेमदृष्टि से देखेंगे और आपस में प्रेम करके हम आपस के अनैक्य को दूर करेंगे और परस्पर सहायता करेंगे?

वे व्यक्ति धन्य हैं जिनके हृदय में प्रेम है। वे मनुष्य धन्य हैं जिनके हृदय में स्वदेश-प्रेम विराजता है। जाति की कीर्ति-पताका और उज्ज्वल यश विस्तार करने वाला और मनुष्य को देवताओं की भाँति अजर अमर करने वाला कोई अमृत है तो वह स्वदेश प्रेम ही है। इसको पान करके जो अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, सफलता उनके पास आप ही विराजती है। स्वदेश प्रेम के लिये हृदय को उदार करना होगा, यहाँ तक कि, स्वार्थ मूलक विचार उसमें से निकाल देने होंगे। ऐसे हृदयवान मनुष्य फिर जो चाहें सो कर सकेंगे, जो चाहेंगे पा सकेंगे। इससे हम सबके लिये प्रेम और विशेषतः स्वदेश प्रेम आवश्यक देश के गुण हैं।

हम दीर्घजीवी कैसे हो सकते हैं?

मनुष्य शरीर का अन्त मृत्यु है। जब शरीर किसी कारण से प्राणवायु के धारण करने में असमर्थ हो जाता है, तब मनुष्य मर जाता है। शरीर को दुर्बलता से बचाने और उसे शिथिल पड़ने से बचाने

और नष्ट हो जाती है, उन कारणों से मनुष्य को अपनी जीवनशक्ति की रक्षा करनी चाहिये। सर्दी सब से भयानक शत्रु है। थोड़ी सी सर्दी हमारी जीवशक्ति को बल देती है किन्तु इसकी अधिकता अनिष्टकारी है। सर्दी में कोई भी जीव प्रफुल्लित नहीं होता, न उसमें अण्डा फूटता है और न अनाज पक सकता है। हमारे जीवन के सच्चे मित्र ये हैं—रोशनी, हवा और गर्मी। जहाँ जीवन है वहाँ गर्मी भी है। उष्णता जीवन देती है और जीवन को उत्तेजित करती है और इन दोनों में ऐसा सम्बन्ध है कि, हम नहीं कह सकते, कि, इनमें कौन सा कार्य्य है और कौन सा कारण है। वृक्षावलि में देखा जाता है कि, वे पेड़ अधिक काल तक स्थिर रहते हैं जो बड़े दृढ़ और कड़े होते हैं। जैसे बबूल, नीम, पीपल, शीशम। छोटे छोटे वृक्ष और पौधे थोड़ी ही आयु पाते हैं। इससे यह निकाला जा सकता है कि, वे ही मनुष्य अधिक आयु प्राप्त सकते हैं जो दृढ़ और बलवान् हैं। इससे मनुष्यों का को बलिष्ठ और परिश्रमी बनाना अपनी आयु बढ़ाना है। और आलसी अधिक काल तक नहीं जी सकते। बचपन में हिक सम्बन्ध करना अनर्थकारी है। बचपन ही में की दृढ़ नींव रखी जा सकती है। हमारे पुरखा बड़ी ब्रह्मचर्य्य रखते थे, इसलिये दीर्घजीवी होते थे।

ऐसे मनुष्य जो दीर्घजीवी हुए हैं, उनके से पता लगता है कि, उनका जीवन था। वे लोग साधारण भोजन करते थे। थे, नशा नहीं करते थे, हँसमुख और पवित्र थे और चिन्ताओं से कम घिरे रहते मरते समय अपने मित्रों से कहा था—" हमारा दुनियाँ का खेल अब खतम होता है।"

जब मरने लगा, तब उसकी आयु १०० वर्ष से अधिक थी। उसके बान्धवों ने पूछा कि अब आपका अन्त समय है, आप बतलावें कि, आपकी अन्त्येष्टि क्रिया कैसे करें? फिलासोफर (Demona) ने उत्तर दिया कि, इस विषय की कुछ चिन्ता मत करो, गन्ध मेरे मृत-शरीर की अपने आप अन्त्येष्टि क्रिया कर देगी। बान्धवों ने कहा कि—"क्या आपकी यह इच्छा है कि, आपके शरीर को कुत्ते और चील कौवे खा जायें?" फिलासोफर ने कहा—क्यों नहीं? मैंने इस शरीर द्वारा अपने जीवन में मानवजाति की सेवा की है; मैं अपने मृतशरीर से पशुपक्षियों का कुछ उपकार कर सकूँ तो अच्छा ही है।" ऐसे उच्च विचारों के शुद्ध हृदय और प्रसन्नचित्त मनुष्य बहुधा दीर्घजीवन लाभ करते हैं।

जिन स्थानों का जल वायु स्वास्थ्यप्रदायक न हो वहाँ नहीं रहना चाहिये। समुद्रवासी जन बहुधा दीर्घजीवी देखे गये हैं। शीतप्रधान देश दीर्घजीवन के दाता नहीं होते। स्वास्थ्य, शरीर, स्वभाव, भोजन, इन पर मनुष्यों की आयु बहुत निर्भर है। अनुभव से यह जाना गया है कि, विवाहित स्त्री और पुरुष ही अधिक जीवित रहते हैं और उनमें भी जिन्होंने अपना वैवाहिक सम्बन्ध अधिक अवस्था में किया था। वर्तमान समय में किसी कुँआरे ने दीर्घ जीवन नहीं पाया है। कारण कदाचित् यही हो कि संसार में जो अविवाहित पुरुष हैं, उन्हें अकेले ही सब दुःख व आपत्ति सहन करनी पड़ती है और उनको दुःख सुख में भाग लेने वाला कोई नहीं होता और विवाहित पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी उसके रोग शोक में सहायता और सहानुभूति करने वाली होती है जिससे उसको बहुत कुछ शान्ति और सन्तोष मिलता है। एकाकी मनुष्य का जीवन भी बहुधा दुःखदायी होता है और विवाहित पुरुष का अपनी सह-धर्मिणी और बालबच्चों के साथ अवकाश का समय आनन्द से

व्यतीत होता है। बर्टन साहब अपने ग्रन्थ (Anatomy ·
Melancholy) में लिखते हैं—" यदि तुम अपना कुशल क्षेम चाह
हो और अपने मन और शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हो, तो य
मेरी एक छोटी सी बात सुन लो। न कभी अकेले रहो और
कभी सुस्त रहो।" प्लिनी नाम का विद्वान् लिखता है—" साध
रण भोजन सब से उत्तम है, क्योंकि बढ़िया और स्वादिष्ट भोज
बहुधा अनेक रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं।"

जो लोग माँस नहीं खाते वे उन लोगों की अपेक्षा अधिक जी
हैं जो मांसभोजी हैं। गाँव में रहना तथा छोटी बस्तियों में रह
जीवन को दीर्घता देने वाला है। इस विचार से बड़े शहरों में रह
बुरा है और स्वास्थ्यकर कभी नहीं कहा जा सकता।

सब से बड़ी बात यह है कि, मनुष्य को अपने जीवन में प्रकृ
के नियमों पर बड़ा ध्यान रखना चाहिये। इसके नियम पालने
मनुष्य का बड़ा कल्याण होता है। प्रकृति के नियम तोड़ने
मनुष्य बड़ी विपत्ति में फँस जाता है। यह एक ऐसी बात है
जिसको सब विद्वानों ने माना है। यदि तुम भूखे हो तो भोजन
करो, नहीं तो न खाओ यदि ठंड लगती है तो कपड़ा पहिन लो,
नहीं तो ठंड लगने से हानि होगी। युवावस्था ही में स्त्रीसंसर्ग होना
ठीक है। अल्पायु में ऐसा काम करने से मनुष्य कभी दीर्घायु नहीं
हो सकता। ऐसे मनुष्य अल्पायु ही में मर जाते हैं। मनुष्य को
युवावस्था में परिश्रमी बनना चाहिये। बुढ़ापे में शान्तिप्रिय और
आनन्दी बनना चाहिये। किसी भी आलसी ने दीर्घायु नहीं पाया
है। मनुष्य की जीवशक्ति तथा उसके शरीर की गठन इस योग्य है
कि, यदि उसका सदुपयोग किया जाय, तो मनुष्य निस्सन्देह १००
वर्ष तक जी सकता है। यह आयु सब प्रकार सम्भव है।

निस्सन्देह मनुष्य सांसारिक रचना भर में मुकुटमणि है। प्रकृति की पूरी योग्यता इसकी बनावट में प्रकाशित होती है। हमारा हृदयपिण्ड एक लाख बार प्रत्येक दिन में धड़कता है और कम से कम ४० या ५० पौंड खून को शरीर में फिराता रहता है। लोहे की कल भी इस काम को निरन्तर करने से घिस सकती है। हमारे शरीर के परमाणु भी सदैव बदलते रहते हैं। यहाँ तक कि तीन महीने पश्चात् हमारा शरीर बिलकुल नये परमाणुओं से बना हुआ होता है। पट्ठे नये और बलिष्ठ होते रहते हैं। हर समय हमारा शरीर बिगड़ता और बनता रहता है। खून या किसी प्रकार अभाव होने से वह फिर १४ दिन में बन जाता है। नियत समय तक हड्डियाँ भी बदलती रहती हैं। टूटी और नई हड्डी फिर बन जाती हैं। हमारे शरीर की सब धातुएँ इसी प्रकार बदलती रहती हैं। वास्तव में परमेश्वर की सृष्टि में मनुष्य का शरीर एक अपूर्व यन्त्र है।

हमारे इस शरीर की मृत्यु इस प्रकार होती है। पहिले पहिले इन्द्रियों के अन्दर शक्तियाँ दुर्बल हो जाती हैं। उससे जीवन शक्ति अपना काम ठीक ठीक नहीं कर सकती। हृदयपिण्ड रुधिर के द्वारा और दोष के फिर साफ नहीं हो सकता है। इसलिये नाड़ियाँ सख्त हो जाती हैं और लचक नहीं रहती है। परन्तु तब भी रुधिर वहीं इन्हीं नाड़ियों में फिरता रहता है। धीरे धीरे यह शक्ति भी नष्ट हो जाती है। हृदयपिण्ड की धड़कन और रुधिर नहीं चलता और इससे हृदयपिण्ड निर्बल हो जाता है। हृदयपिण्ड की धड़कन और [illegible] बहुत कठिन [illegible] है, परन्तु कुछ काल में इसकी धड़कन बन्द हो जाती है और [illegible] देर लेता है। शरीर के सब पदार्थ ठण्ढे हो जाते हैं और तब मृत्यु हो जाती है।

विचारों को सुधारो

विचारों का मनुष्य के आत्मा और शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। विचार यदि सच्चे और ऊँचे हों तो जिस पुरुष के हृदय में उत्पन्न हुए हैं उसे बिना ऊँचा बनाये नहीं रहेंगे। एक एक विचार ने संसार में बड़ा भारी काम किया है। किसी किसी विचार के द्वारा संसार में बड़े बड़े परिवर्त्तन हो गये हैं। मनुष्य का शीलवान् होना उसके विचारों ही पर निर्भर है और उसका चरित्रवान् होना भी विचार ही की लीलामात्र है। एक महात्मा का कथन है कि जद्द विचारों को उठने न दो और यदि उठते हों तो उनको शुद्ध करके अच्छे और उच्च विचार ही संचित करो।

नीच विचार मनुष्य में कायरता और नीचता लाते हैं। अच्छे अच्छे विद्वानों को एक आध नीच विचार ने विद्वत्ता के आसन से गिरा दिया है। बड़े बड़े प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने इसके प्रभाव से बड़ी बदनामी उठायी है। वीर पुरुष तब ही तक अपनी वीरता का घमंड कर सकता है जब तक उसके विचार अच्छे हैं, लक्ष्य ऊँचा है, बड़े बड़े वीरों को देखा है कि, एक एक सुन्दरी को देखकर और बुरे विचार को पा कर नीच काम में लिप्त हो गये हैं। विश्व के इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ देख पड़ती हैं। कहीं कहीं रोगी और अशक्त मनुष्य भी अपनी अपनी मृत्युशय्या से उठ कर देश के लिये लड़े हैं। कहीं वीर मनुष्य भी कायरता की परम सीमा को दिखा चुके थे और युद्ध आरम्भ हो चुका था कि, शत्रु योद्धाओं के मन में कायरता का विचार पैदा हुआ, उन्होंने ढाल तलवार फेंक दी और मुर्दों के नीचे जाकर लेट गये। पर वहाँ क्या उनके प्राण बच गये? नहीं, हाथी और घोड़ों के पावों से कुचले गये और कायरों की मौत मरे। कवि लौंगफ़ेलो कहता है कि—"इस जीवन

संग्राम में कायर की तरह मत रहो। किन्तु वीर बनो।" यह बात भी सत्य है। मरना तो निश्चय ही फिर क्यों न प्रशंसा योग्य सत्कार्यों के लिये अपने जीवन का बलिदान करें? कायर एक तो बुरा काम करते ही मर जाता है और दूसरी बार प्रकृत मृत्यु से मरता है।

अपने हृदय से बुरे विचारों को दूर करना सहज काम नहीं है। परन्तु तौभी यह मानवजीवन के करने ही का काम है। बुरे विचारों से पैदा हुए दोष मनुष्य के शरीर को भी बिगाड़ते हैं। इन बुरे विचारों के कारण मनुष्य पागल तक हो जाता है। हज़ारों लाखों आदमी विचारों को यों ही मस्तिष्क में आने देते हैं। जिस तरह कांटा कांटे से निकाला जाता है, वैसे ही जो बुरे विचार को सद्विचार से निकालना जानते हैं, वे ही विचारशील कहलाते हैं। ऐसे पुरुष कम मिलते हैं। ऐसे ही सज्जनों का सङ्ग सत्सङ्ग कहलाता है, परन्तु ऐसे पुरुष प्रत्येक स्थान और प्रत्येक पुरुष को मिलने कठिन हैं। लेखन-कला ने इस विषय में मानव समाज का बड़ा उपकार किया है। ऐसे महात्माओं की ग्रन्थ-रचना बड़ा सुमङ्गल करने वाली है। बुरे विचारों को सुधारने के लिये सद्ग्रन्थ भी बड़े उपकारी होते हैं।

जो पढ़ने के प्रेमी हैं वे उपर्युक्त विषय की सत्यता को ख़ूब जानते हैं। जो पुस्तकों का प्रेमी है उसे न अच्छे मित्र की आवश्यकता है और न किसी श्रेष्ठ सम्मति-दाता की। पढ़ने, समझने और विचार करने से आदमी बड़ा कल्याण प्राप्त करता है। पुस्तकें बड़े मनुष्यों की छाया हैं, परन्तु इनमें एक विशेष गुण है कि, ये विद्वान् मनुष्यों के समान बोलती और समझती हैं। इनके द्वारा कालिदास एवं शेक्सपियर अपनी कविता सुनाने [illegible] हैं। पुस्तकों में योग्य पुरुषों के सद्विचार अच्छे प्रकार [illegible] रहते

हैं। ये विचार युवावस्था में हमें पथदर्शक और बुढ़ापे में लाठी का काम देते हैं। कारलाइल कहता है कि, अच्छी पुस्तकों का संग्रह ही सच्ची यूनीवर्सिटी है। विचारों के सुधारने के लिये ग्रन्थों का अवलोकन करना और उनका अनुसरण करना ही एकमात्र उपाय है। ऐसा करने से तुम योग्यता प्राप्त कर सकोगे और फिर निश्चय ही तुम्हें ऐसे महात्मा भी प्राप्त हो जायँगे जो तुम्हारे विचारों को उज्ज्वल और सद्भाव-पूरित बना देंगे। पात्र बनो, विद्वानों के पास या तो तुम स्वयं पहुँच जाओगे या वे तुम्हारे पास आ जायँगे। अच्छे अच्छे ग्रन्थो के पढ़ने की अभिलाषा मनुष्य में बड़े बड़े गुण पैदा कर देती है। कभी कभी ऐसे ही आदमी नररत्न कहलाये जाते हैं। बचपन में विचारों का सुधारना बड़ा आसान है। इस समय के विचार जीवन भर अपना काम करते रहते हैं। इसीसे शिक्षिता माता का होना बड़ा आवश्यक है। बालक के कोमल हृदय में माता के बैठाये हुए विचार भविष्य जीवन के सञ्चालक है। धन्य है वे देश जहाँ माता शिक्षिता हैं और अपने बच्चों के विचार सुधारती हैं। कितने ही बड़े आदमियों ने अपनी बड़ाई का कारण अपनी माताओं को बतलाया है। पढ़ने के शौक ने भी बड़े बड़े काम किये हैं। चीन के महात्मा कानफ्यूशस विद्या का बड़ा प्रेमी था। वह पढ़ने में ऐसा मग्न हो जाता था कि भूख प्यास को भी भूल जाता था। विद्या की प्राप्ति में वह अपने सब शौक भूल जाता था। उसने कहा है कि, विद्या के प्रेम में मुझे यह भी खबर नहीं रही कि, बुढ़ापा मुझ पर कब आयी। इसी महात्मा की चीन में पूजा होती है। जिस भवन में अनेक विषयों और उत्तम विचारों का संग्रह है, वह स्थान भी धन्य है। मूर्खों के सिवाय सब लोग इस स्थान पर आकर शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तकालय की भूमि स्वर्ग के समान सुन्दर और रमणीय है, जीवन के दुःखों मे

ने का आश्रय है। धनाढ्य और दरिद्र दोनों इस स्थान पर समान रूप से आनन्दित हो जाते हैं। जो पुस्तकालय की स्थापना का प्रचार लगाते हैं वे जीते जी अपने लिये स्वर्ग की रचना करते हैं। उन देशों में यह विषय ऐसा ही आवश्यक समझा गया है जैसा कि जीवन के लिये खाना पीना। वहाँ पर गली गली और मुहल्लों मुहल्लों में पुस्तकालय हैं। क्या भारत में भी यह दृश्य कभी देखने में आवेगा!

बिना विचार किये पढ़ने से भी प्रकृत (सच्चा) लाभ नहीं होता। पुस्तकों के लेखों के विचार से अपने विचारों को मिलाने ही से ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति होती है। भोजन करने का यथार्थ प्रयोजन यही है कि भोजन पच जावे और उससे वह रस उत्पन्न हो जावे जो हमारे सारे शरीर का पालन करता है। फिलासोफर लॉक कहते हैं—"अध्ययन शिक्षा प्राप्त करने का गौण साधन है, प्रधान नहीं। पुस्तकों से कुछ सीखना मानो दूसरों की आँखों से देखना है।" इसलिये विचार करने में अधिक ध्यान दो। जो कुछ पढ़ो उस पर विचार कर उसे अपना बनाओ। विचार ने बड़े बड़े फिलासोफर उत्पन्न कर दिये हैं। बिना विचार के पढ़ने वाले उनके समान हैं जो अधिक भोजन कर रोगी बन जाते हैं। इसलिये पुस्तकें पढ़ो, विचारो और अपने विचारों को सुधारो।

पवित्र-जीवनी

महात्माओं ने बार बार यही उपदेश दिया है कि अपने अन्तःकरण की ओर ध्यान दो। अपने प्रतिदिन दिन का विचार करने से मनुष्य बहुत सी बुरी बातों से बच जाता है। इससे जीवन में पवित्रता की झलक चमकती है और उसे उच्च और महत्त्वपूर्ण जीवन

का मार्ग मिल जाता है। सचमुच यदि मनुष्य अपनी मृत्यु का ध्यान हृदय में धारण कर सत्कर्म किया करे, तो वह अपना बड़ा उपकार कर सकता है। हमारे मर जाने पर इस दुनिया में हमारी दो चीज़ें रह जाती हैं—एक तो हमारे कर्म और दूसरे कीर्त्ति या अपकीर्त्ति। इन बातों का और कीर्त्ति का आनेवाली पीढ़ी पर बड़ा प्रभाव पड़ा करता है। जिस किसी जाति में कोई महान् पुरुष हो जाता है और विश्वव्यापिनी कीर्त्ति से विभूषित होता है। उस जाति वाले उस महान् पुरुष की कीर्त्ति को अपनी पैतृक कीर्त्ति समझते हैं। ऐसे आदमी का नाम लेकर वह जाति पवित्र अहङ्कार से अपना पूजन और कीर्त्तन कराती है। उस जाति के युवाओं के हृदयों में एक नयी शक्ति का आविर्भाव होता है और वह उसके प्रदर्शित मार्ग पर स्वयं चलने लगते हैं। यही मार्ग है जिससे जाति गौरवशालिनी बनती है एक एक मनुष्य के पवित्र जीवन ने हज़ारों मनुष्य में नया जीवन, नूतन उत्साह और अपूर्व क्रिया शक्ति ला दी है। आजकल भारतवासी चाहे इस बात को कठिनता से समझें परन्तु पश्चिम में इस विषय की सत्यता प्रत्यक्ष देख पड़ती है। पवित्र-जीवन के मनुष्य ही उच्च पदस्थ होते हैं। इससे पवित्र-जीवन व्यतीत करना बड़ा ही कल्याणकारी और महोपकारी है।

एक विद्वान् का कथन है कि चिता की आग मनुष्य के शरीर को भस्म कर देती है, परन्तु उसका किया हुआ आचरण इस संसार में घूमता रहता है। अच्छे आचरण से उसके जाति वालों को लाभ और बुरे आचरण से उन लोगों को हानि उठानी पड़ती है। इतिहास इस विचार को और भी स्पष्ट कर देता है। एक एक पुरुष के उच्चकर्म से कितनी ही जातियाँ उठीं और उन्नति के शिखर पर चढ़ीं। एक पुरुष के नीच कर्म से बड़ी जाति नष्ट भ्रष्ट हो गयी। भारतवर्ष के इतिहास में ये बातें बड़ी ही स्पष्टता के साथ देख

ते हैं। इतिहास देश और जातियों के उत्थान और पतन का दृश्य दिखाते हैं, उसी तरह सत्कर्म और असत्कर्म का भी उपदेश देते हैं। सूर्य दिन भर अपनी प्रखर किरणों से प्रकाशित रह कर सन्ध्या को पश्चिम में अस्ताचल की ओट में जा छिपता है, किन्तु उस समय भी अपनी अरुण छटा से यात्रियों के पथ दिखाते हैं। वृक्ष जङ्गल में जन्म लेकर बढ़ते हैं और अपने जीवन से परोपकार में लगे रहते हैं, उनके गिर पड़ने पर भी उनकी लकड़ी नाना प्रकार के कामों में आती है। छोटे छोटे मूँगे कीड़े अपना जीवन का अर्पण करके समुद्र के मध्य में टापू बना देते हैं। उनका कर्म उनके पीछे भी बना रहता है। इसी तरह मनुष्य चाहे मरें या जीवित रहें, किन्तु बुरा या भला जो कुछ कर्म करते हैं वह उनके पीछे भी रहता है। पवित्र जीवनी के सुकर्म भी नहीं नष्ट होते, वरन् कर्त्ता के चिता में जलने से निर्मल और उज्ज्वल हो जाते हैं। भारत के वीर पुरुष के चरित्र आज भी संसार में चमक रहे हैं। बड़े बड़े धर्म के उपदेशक और महात्मा संसार को उपदेश देकर चल बसे ; परन्तु उनके उपदेशों का प्रभाव उनके गुणों की ज्योत्स्ना और उनके उच्च-भाव हमारे हृदय में आज भी राजते हैं। ये लोग मृत होकर भी हमारे कानों में अपने अमूल्य उपदेश डाल रहे हैं। उनके चरित्र कितने ही युग पहिले इस पुण्य-भूमि में सम्पादित हुए, परन्तु आज भी उन महात्माओं के पवित्र जीवन और उच्च-भाव हमारे सदाचार और आचरण के बनाने में बहुत कुछ सहायता दे रहे हैं। विश्व का वैभव नाशमान है। संसार भी असार है, परन्तु पवित्र जीवन के श्रेष्ठ कर्म ही संसार में सदैव रहते हैं। इन कर्मों को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

जो कुछ हम कार्य्य करते हैं वे वैसा ही हैं जैसे कि किसी नाटक-मण्डली के पात्र रङ्ग-भूमि में करते हैं। जो कुछ हमारे मुख

से निकलता है वह प्रतिध्वनि में जा मिलता है जो कि कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। जो कुछ भला व बुरा मनुष्य करता है, उसका प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। बिना कर्म किये मनुष्य जीवित रह ही नहीं सकता। जब तक हम जीवित हैं तब तक कर्म करते रहते हैं और मृत्यु प्राप्त होने पर भी हम सोचते हैं और इस पृथ्वी के निवासी ही हमारी लीला के दर्शक हमारी बातों के श्रोता हैं। इससे मनुष्य जो कुछ कर्म करे उसमें पवित्रता रहनी चाहिये। पवित्र जीवन ही अमरता का दाता है। पवित्र और निर्मल नदियों ही से निर्मल धारा बहती है। फलवान् वृक्ष ही सुन्दर फल प्रदान करते हैं। जिस उद्देश के लक्ष्य को स्थिर करके कोई काम किया जायगा और यदि वह (लक्ष्य) उच्च और पवित्र होगा तो वह प्रभाव जो ऐसे कर्मों से उत्पन्न होगा पवित्र और उत्तम होगा। अतएव यह उचित है कि, हम जिस काम धन्धे व्यापार नौकरी या खेती में लगें, उसमें पवित्रता का बड़ा विचार रखें। पवित्र जीवन पवित्र कर्मों ही से बना करता है। राजा और रङ्क दोनों ही इस पवित्रता को प्राप्त कर, जन्म सुफल कर सकते हैं। एक विद्वान् का कथन है—"तुम चाहे जैसा और चाहे जहाँ काम करो, परन्तु जो कुछ करो उसे पवित्र और सच्चे हृदय से करो। ऐसा आचरण करने से तुम्हारा नाम प्रशंसा के साथ स्मरण किया जायगा।"

आजकल के उन्नत देशों में भी इस बात का बड़ा ध्यान रखा जाता है। वहाँ पर ऐसी शिक्षा दी जाती है कि विद्यार्थियों की विद्या और बुद्धि की उन्नति के साथ साथ नैतिक उन्नति भी हो। ऐसे ही युवक अपने जीवन को सत्कर्मों में व्यतीत कर सकते हैं। भारत में विद्यार्थियों के सदाचार की शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती। इसीसे जैसे वे अपने धर्म कर्म में कोरे रहते हैं, वैसे ही वे

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पुरुष में देखा गया है, जिसके कारण ही एक बड़ा राजनीति विशारद भी अपने देश वासियों पर बोल कर कुछ प्रभाव डाल सकता था और दिखला सकता था कि, इन दोनों गुणों के होने से वह क्या कर सकता है। इस बात की आवश्यकता ने उन्हें वक्ता बना दिया।

डिमास्थनीज़ ने कहा है कि, वक्तृत्व का तत्व क्रिया है। यहाँ क्रिया शब्द का अर्थ संकुचित अर्थ में नहीं, किन्तु व्यापक अर्थ में है। उसने फिर भी कहा है कि व्याख्यान देने में मुख्य वस्तु क्रिया है। यूनान देश के बड़े बड़े विद्वानों ने वक्तृत्व की यही परिभाषा की है। यह आश्चर्य्य की बात है कि, यह परिभाषा आजकल भी ही मान्य। आजकल के एक सुवक्ता ने भी कहा है—" वक्ता का मुख्य कार्य्य या प्रयोजन क्रिया है। वक्ता का बड़ा काम केवल शिक्षा देना या ,खुश करना ही नहीं है, किन्तु श्रोताओं को अपने विषय की ओर खींचकर विश्वास दिलाना है। मिस्टर ग्लैडस्टोन ने इस विषय में यह कहा है कि, वक्तृत्व, तर्कनाशक्ति और मनोविकार का संयोग है। उनकी इस बात का समर्थन उनकी जीवनी लिखने वाले मिस्टर जौन मार्ले ने भी किया है।

मिस्टर ग्लैडस्टोन ने अपनी होमरिक स्टडीज़ (Homeric Studies) नामक पुस्तक में लिखा है कि, वक्ता का काम आरम्भ ही से पूरी तरह पर अभ्यास से मिला हुआ है। वक्ता का काम यह है कि, जो सोना उसके श्रोताओं की मण्डली को हृदय में बनाता हो, उस शक्ति ही से अपनी वक्तृता को ढाल दें। इस बात को इस तरह भी कह सकते हैं कि, अपने जिन श्रोताओं से वाष्प रूप में कुछ सहायता लेता है, उसको वह फिर वाक्य प्रवाह रूप में उन्हीं श्रोताओं में लौटा देता है। सहानुभूति तथा भावों की

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ही चाहिये था और जो अधर्मियों का साथ देता है। उसका भी नाश होता है। इसलिये दुर्योधन की दुष्टता का फल बहुतों को भोगना पड़ा। महाभारत युद्ध को हुए ५००० वर्ष से अधिक समय हो गया, परन्तु हमारे क्षत्रियवर्ग में आज तक दुर्योधन जैसे दुर्बुद्धि लोग पैदा होकर आते हैं जो ईर्ष्या, द्वेष और परस्पर के विरोध से अपना सर्वनाश कर रहे हैं। हम नहीं जानते कि कुलद्रोही इस हीनावस्था को पहुँचकर भी और क्या चाहते हैं। वे अपने दुष्कर्मों से क्षत्रिय वर्ग को रसातल को पहुँचाकर भी क्यों सन्तुष्ट नहीं होते? हे ईश्वर! क्या आप क्षत्रिय वर्ग के अस्तित्व ही को मूलत से नष्ट किया चाहते हैं? क्यों उनको सुबुद्धि नहीं देते?

कोई कोई लोग महाभारत युद्ध का कलङ्क श्रीकृष्णचन्द्र पर भी लगाते हैं और कहते हैं कि अगर श्रीकृष्णचन्द्र जी पाण्डवों को युद्ध के लिये उत्तेजित न करते तो युद्ध न होता। हम अपने इस लेख में यह भी दिखाना चाहते हैं कि श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कौरवों और पाण्डवों में मेल कराने का बहुत यत्न किया था परन्तु दुर्योधन ने किसी की बात नहीं मानी और अपने हठ पर दृढ़ रह कर, अपना और सम्पूर्ण भारतवर्ष का नाश किया। आज भी जो लोग दुर्योधन की चाल पर चलते हैं, उनको समझना चाहिये कि, आपको इस चाल से आपका और आपके भाई बन्धु दोनों ही का नाश होगा। उनको दुर्योधन की कुचाल का विवरण पढ़ कर कदाचित् कुछ प्रबोध हो, इस अभिप्राय से आगे हम दुर्योधन की और दुराग्रह की बातें लिखते हैं।

जब पाण्डव १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष तक गुप्तवास कर चुके, तब दूत द्वारा अपना राज्य लौटाने का दुर्योधन के पास समाचार भेजा। परन्तु दुर्योधन ने उनका राज्य लौटाना अस्वीकार किया। धर्मशील युधिष्ठिर ने तो यहां तक धृतराष्ट्र से इस

[illegible] था कि [illegible] पाँच गाँव [illegible] है। परन्तु [illegible] पाण्डव [illegible] दुर्योधन ने [illegible] उत्तर दिया था कि [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र [illegible] पाण्डवों [illegible] न दूँगा।

[illegible] दुर्योधन ने, यहाँ तक अधर्म पर कमर बाँधी, तब [illegible] हस्तिनापुर [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र जी सन्धि करने के लिये हस्तिनापुर गये। [illegible] हस्तिनापुर पहुँचने पर महात्मा विदुर जी ने उनसे कहा था कि [illegible]

जिससे तुम्हारे वंश में बट्टा लगे। तुमको उचित नहीं कि, मूर्ख और नीच लोगों का सा व्यवहार करो। इस समय जिस मार्ग पर चल रहे हो वह अधर्म और पाप बढ़ाने वाला मार्ग है। देखो, तुम्हारे दुराग्रह से कितने प्राणियों का नाश होगा। तुमको वही काम करना चाहिये जिससे तुम्हारी और तुम्हारे भाई बन्धुओं की और मित्रों की भलाई हो। पाण्डुपुत्र बड़े सज्जन, धर्मात्मा, विद्वान् और वीर हैं। तुम्हारे पिता, पितामह, भीष्म, गुरु, द्रोण और अन्य गुरुजनों की इच्छा है कि, उनसे सन्धि हो जाय। इसलिये हे मित्र! तुम्हारा कल्याण इसी में है कि, उनसे सन्धि कर लो। जो अपने मित्रों की उचित सम्मति को नहीं मानता, उसका कभी भला नहीं होता और अन्त में उसको पछताना पड़ता है। तुम्हें उचित है कि, तुम अपने भाइयों और मित्रों पर दया करो और अपने पिता की आज्ञा को मानो। स्मरण रखो कि स्वार्थी मिथ्याचारी और प्रशंसक और दुष्ट मित्रों की सम्मति पर चलने वाला दुःख उठाता है। पाण्डवों के साथ मित्रता रखने में सर्वथा लाभ है। देखो, तुमने कितनी बार उनको सताया, परन्तु उन्होंने तुम पर कभी हाथ नहीं उठाया और न कभी तुमसे बदला लेने की इच्छा प्रकट की। तुम जानते हो कि, धनुर्विद्या में अर्जुन अद्वितीय है। तुम्हारी सेना में उसका सामना कोई नहीं कर सकता। हे राजकुमार! तुमको उचित है कि, तुम अपने भाइयों और मित्रों पर दया करो। तुम्हें अपनी प्रजा पर दया करनी चाहिये। नहीं तो युद्ध में सब का नाश हो जायगा और लोग यही कहेंगे कि, दुर्योधन ने अपने कुल का नाश करा दिया। पाण्डव इस बात पर सहमत हैं कि, धृतराष्ट्र को अपना सम्राट स्वीकार कर और तुमको युवराज मानें, किन्तु इसी शर्त पर कि तुम उनका आधा राज्य दे दो। हे दुर्योधन! इस अवसर को उत्तम समझ और पाण्डवों

मैंने उसके हाथ और मुख नत किये। विदुर, भीष्म, विदुर ने बार बार उसको बड़े बड़े कुछ भले शब्दों में समझाया था, परन्तु दुर्योधन पर किसी के कहने का असर न पड़ा। वह बोला, हे महाराज ! मैंने आपके वचन सुने। मुझे ऐसा न था कि जिस समय आप मुझसे ऐसी बातचीत करेंगे। मैं नहीं समझता कि आपके मुख से ऐसे वचन क्यों निकल रहे हैं और पाण्डवों के सब कामों की प्रशंसा आप किया करते हैं। ... आपको विदुरजी की, पितामह की, गुरुजी की और ... की बुद्धि में मैं दोषी हूँ; परन्तु मुझे तो अपने में कोई दोष नहीं दिखाई देता। डर से तो मैं इन्द्र के सन्मुख भी सिर न झुकाऊँ। क्षत्रिय होकर डर किस बात का ? यदि मैं लड़ाई में मारा गया तो सीधा स्वर्ग को जाऊँगा। क्षत्रिय लोगों का महान् काम यही है कि युद्धभूमि में शयन करें। मेरे पिता ने मेरे बचपन में उन्हें आधा राज्य दे दिया था, किन्तु अब मैं इन बातों पर चली है। मैं नहीं सकता कि उनको राज्य का कुछ भी भाग दिया जाय। जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, मैं उनको सुई की नोक के बराबर भी भूमि न दूँगा।

दुर्योधन की बात सुनकर धृतराष्ट्र जी के क्रोध से कांपने लगे और यह कहने लगे कि हे दुर्योधन ! क्या तू सत्पुरुषों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देता है ? अच्छा, तेरी इच्छा पूरी हो ... तूने मेरे महात्माओं सज्जनों की बात न मानी। तेरी इच्छा पूरी होगी और इसके लिये तुझे अधिक शोक न करना पड़ेगा। भारतवर्ष अपना ... सब कुछ ... है। तूने उनका सब ... और उस ... पर ... तुझे पछताना पड़ेगा। तुझको मैंने सब ... ने समझाया, परन्तु उन ... के ... का कुछ असर न पड़ा। ... जब मुझे

के वश में किये बिना अपने मित्रों और सलाहकारों को अपने वश में किया चाहता है, वह अपना मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकता। इसलिये पहिला कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि, मनुष्य अपने मन पर अधिकार करे। ऐसे पुरुषों ही को सौभाग्य प्राप्त होता है। बुद्धिमानों को चाहिये कि, वे काम क्रोध को जीतें। सांसारिक इच्छा छोड़ कर भी कोई सुख नहीं प्राप्त कर सकता है। निदान इस प्रकार उपदेश करते हुए गान्धारी ने दुर्योधन को बहुत कुछ ऊंचा नीचा समझाया; कभी उसको अर्जुन और कभी उसको श्री कृष्ण की वीरता से डराया; कभी भीष्म, धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य की अप्रसन्नता का भय दिखाया; कभी धर्मभाव और कभी न्याय और कभी मातृप्रेम के विचार से अपनी बात स्वीकार करानी चाही; परन्तु उसने अपनी माता की भी कोई बात न मानी और अप्रसन्न हो, उठ कर चला गया और बाहर जाकर श्रीकृष्ण को पकड़ने का अपने मित्रों में विचार किया। राजकुमार सात्यकी को यह विचार विदित हो गया। सो इधर तो उसने अपनी सेना को तैयार रहने की आज्ञा भेज दी और उधर दरबार में पहुंच कर श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आज्ञा से धृतराष्ट्र को यह समाचार सुनाया। सारा दरबार यह समाचार सुनकर चकित सा रह गया और धृतराष्ट्र लज्जा और क्रोध से कांप उठे और दुर्योधन को बुला कर बहुत धिक्कारा।

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से बिना अपना मनोरथ पूर्ण किये पाण्डवों के पास लौट गये और अब इसके सिवाय कोई बात न रही कि, पाण्डव युद्ध करके दुर्योधन से अपना राज्य लौटावें। निदान पाण्डव सेना लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में जा डटे और फिर जो महाघोर युद्ध हुआ उसमें दुर्योधन अपने सब भाइयों समेत मारा गया और सम्पूर्ण राज्य भोग की अपनी अनुचित इच्छा को पूर्ण न कर सका।

आत्म-सम्मान

आत्म-सम्मान का भाव प्रत्येक मनुष्य में होना आवश्यक है। बिना गुण के प्राप्त हुए मनुष्य मनुष्य ही नहीं बन सकता। जब किसी जाति के लोगों में आत्मगौरव का विचार होता है तब ही वह जाति उठती है। जो आत्म-गौरव का प्रत्येक समय विचार नहीं रखते हैं वे दूसरों की दृष्टि में तुच्छ समझे जाते हैं। उनका आदर सम्मान भी कहीं नहीं होता। ऐसे लोग अधःपतित होते चले जाते हैं। भारतवासी आत्म सम्मान को पहिले खूब समझते थे, यहाँ तक कि निज गौरव रक्षा के लिये वे प्राण दे देना भी हँसी खेल समझते थे। हमारे देश के प्राचीन इतिहासों में ऐसे हज़ारों दृष्टान्त मौजूद हैं। श्रीरामचन्द्र ने जटायु से स्वर्ग-गमन के समय कहा था—

> "सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ।
> जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दशानन आइ॥"

इस वचन में आत्म-गौरव और धैर्य का कैसा भाव दरसता है!

परन्तु आज कल हमारी विपरीत दशा है। जो लोग आत्म-गौरव की रक्षा का प्रयत्न करना तो क्या, आत्म-सम्मान ही को नहीं समझते, उनका सर्वत्र अपमान होता है। उदर पोषण के लिये नीच से नीच और निन्द्य कार्य करने पर भी, आत्म-सम्मान-शून्य लोग उतारू हो जाते हैं।

जिस आदमी में आत्म गौरव का विचार नहीं होता उसके पड़ोसी उसको कुछ नहीं समझते। इसी प्रकार जिस जाति में

गौरव लुप्त हो जाता है उसे और जातियाँ नीच दृष्टि से देखती हैं। आर्य्य-सन्तान में से इस गुण का ह्रास होना मान विदेशियों के शासन से आरम्भ हुआ है और अब तो जाति की बड़ी हीन दशा है। सैकड़ों वर्ष के दासत्व ने इस के मन में आत्म-प्रतिष्ठा के उच्च भाव को खो दिया है। आत्म-सम्मान का भाव उन्हीं में होता है जिनमें आत्मिकबल, धैर्य और उत्साह होता है। जिनमें आत्म-सम्मान का भाव नहीं होता है, वे निरुत्साह और पुरुषार्थ-हीन आर्य्य जाति की भाँति की हीनता की बात जैसे—

"कोउ नृप होय हमें का हानी। चेरी छाँड़ि न होवे रानी॥"

नहीं कहते। भारतवासी धर्म्म धर्म्म तो बहुत चिल्लाया करते हैं, परन्तु वास्तव में इनमें बहुत कम लोग धर्म्म पर आरूढ़ हैं यदि धर्म्मानुसार इनका व्योहार होता तो ये ऐसे निर्जीव और पौरुषहीन न हो जाते। मुसलमानों का अपने मत पर केवल दृढ़ विश्वास ही है जिसके कारण उनमें अच्छा उत्साह है। वे निज मत सम्बन्धी हीन अपमान सुनते ही आप से बाहर हो जाते हैं और जातीय मर्य्यादा का विचार रखते हैं। जहाँ कहीं हिन्दू मुसलमान दोनों में मर्य्यादा व जातीय गौरव दिखाने का अवसर उपस्थित होता है, वहाँ बहुधा हिन्दुओं की शिथिलता और मुसलमानों की दृढ़ता दिखाई पड़ती है। यह आत्म-प्रतिष्ठा ही का विचार था कि अमीर काबुल ने दिल्ली दरबार में आना लार्ड कर्ज़न के निमन्त्रण पत्र के यथोचित रीति से न लिखे जाने के कारण अस्वीकार किया, तब अमीर काबुल अब्दुर रहमान खाँ ने हेन कर्नलिन से कहा था कि हमारे लिये (His Majesty) शब्दों का प्रयोग किया जाया करे। मुसलमानों के आगमन से पहिले हमारे हिन्दू राजाओं में भी ऐसे भाव थे। महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार करना

क्रोध

मनुष्य जितने निन्दनीय कार्य्य और पाप करते हैं, वे सब काम, क्रोध और मोह ही के वशीभूत होके करते हैं। इसलिये कल्याण की कामना रखने वाले मनुष्यों को विचारपूर्वक इन दोनों से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिये। जिसने इनका अवरोध कर लिया उसीका इस संसार में कुछ कल्याण हो सकता है, और जो इनकेवशीभूत हो गया, उसके नष्ट भ्रष्ट होने में देर नहीं लगती। इस निबन्ध में काम और मोह के विषय में कुछ न लिख कर, केवल क्रोध ही के विषय में लिखा जाता है।

क्रोध करने से कुछ लाभ नहीं होता, किन्तु हानि होती है। क्रोध से स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। इसके विरुद्ध प्रसन्न रहने से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है। तुमने देखा होगा कि क्रोधी मनुष्य बहुधा दुबले पतले और सूखे साखे शरीर वाले हुआ करते हैं। क्रोध निर्बल मनुष्य ही पर अपना अधिकार प्रायः जमाता है। जिसमें सहनशक्ति नहीं है, वह क्रोध में भर आपे से बाहर हो जाता है और जो धीर गम्भीर होता है उसको छोटी छोटी बातों पर कभी क्रोध नहीं आता। जिनके शरीर में बल है, मस्तिष्क में शक्ति है, वह छोटी छोटी बातों पर न कभी झुँझलाते हैं और न क्रोध करते हैं। जिसमें क्रोध अधिक होता है, वह क्रोध से अपनी ही हानि करता है। क्रोधी मनुष्य क्रोध के कारण सब को अपना शत्रु बना लेता है और उसे निरन्तर हानियाँ सहनी पड़ती हैं वास्तव में ईश्वर क्रोधी स्वभाव उसीको देता है जो पापी है। संसार में जो सदैव हँसी खुशी से रहता है, सुखमय जीवन उसीका है और संसार का सुख वही भोग सकता है। जो ईर्ष्या द्वेष और क्रोध से जला करता है, वह अपने दुस्स्वभाव का आपही

दण्ड भोगता है। स्त्री हो या पुरुष, क्रोध दोनों के लिये हानिकारी है। "एडवाइस टु विमन" का लेखक जो कि, एक अनुभवी डाक्टर है, लिखता है कि, दुस्स्वभाव और क्रोध से पुरुष की तो पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, और सिर में पीड़ा होने लगती है; पर स्त्रियों के स्तन का दुग्ध विषमय होकर, वह दूध बच्चे को बड़ी हानि पहुँचाता है। जो पुरुष या स्त्री स्वास्थ्य की कामना करते हों, उन्हें उचित है कि वे क्रोध और शोक को परित्याग करें। जो मनुष्य अधिक प्रसन्न-चित्त रहता है, वह दीर्घजीवी होता है। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक लिखा है कि हँसी से बढ़ कर संसार में स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाने वाली दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

तमोगुणी प्रकृति वाले पुरुष ही क्रोध बहुधा किया करते हैं। जो पुरुष सतोगुणी होते हैं, वे उदारहृदय, क्षमा और दया के निकेतन होते हैं। उच्च-अभिलाषा रखने वाले पुरुष को नीच क्रोध के वशीभूत हो, नीच श्रेणी के मनुष्यों में अपनी गणना न करनी चाहिये। क्रोधी पुरुष, क्रोध के शान्त होने पर स्वयं लज्जित होता है। साथ ही यदि कहीं क्रोध के आवेश में कोई अनकरना काम हो गया, तो अपनी उस करतूत का खेद और पश्चात्ताप उसे आजन्म बना रहता है। जब कोई निम्न श्रेणी का मनुष्य क्रोध करता है, तब सब लोग उसका उपहास करते हैं और ऐसे मनुष्य को उसकी करतूत का फल भी बहुधा तुरन्त ही मिल जाता है। कोई मनुष्य तो अकारण ही क्रोध में भर जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें थोड़ी देर बाद ही अपनी करतूत पर हाथ मल कर पछताना भी पड़ता है। अतएव परिणाम-दर्शी मनुष्य को बिना समझे बूझे कभी क्रोध न करना चाहिये। मनुष्य में थोड़ा या बहुत क्रोध का होना स्वाभाविक बात है, परन्तु जहाँ तक मनुष्य से हो सके क्रोध की मात्रा घटावे। उचित कारण उपस्थित होने

पर सभी को क्रोध आता है, पर दिन भर बैठे बैठे क्रोध की आँच में झुलसना ठीक नहीं। कोई कोई निष्कारण क्रोध कर दूसरों पर अपना रोब दाब जमाया करते हैं। यह टेव बड़ी बुरी है। हाँ, बड़े आदमियों के लिये इतनी सिधाई भी अच्छी नहीं, जिससे लोग उनसे दबें ही नहीं जिनके हाथ में शासनाधिकार हो, उनको विचार पूर्वक अपनी बुद्धि से काम लेने की बड़ी आवश्यकता है। क्रोधी मनुष्य का किसी को भी विश्वास नहीं होता। कौन जाने क्रोध के आवेश में भर, यह कब क्या कर बैठे? क्रोधी मनुष्य को लोग जनूनी समझ, कभी उस पर, विश्वास नहीं करते। ऐसे के साथ लोग सम्बन्ध तक रखना बुरा समझते हैं। व्यवसायी मनुष्य को तो क्रोध कभी न करना चाहिये। जो हँसमुख और सरल स्वभाव के होते हैं, उनके पास लोग अपने आप आते हैं और उनके साधारण दोषों पर कोई ध्यान नहीं देता। व्यवसाय में क्रोधी पुरुष बहुत कम सफल होते हैं। क्रोधी पुरुष न तो धन ही उपार्जन कर सकता है और न उसकी लोगों में प्रतिष्ठा ही होती है। जो दूसरों की सेवा में निरत है उसे तो क्रोधी होना ही न चाहिये। क्रोधी नौकर न तो अपने मालिक को प्रसन्न रख सकता है और न अपने साथियों के साथ हेलमेल पूर्वक रह ही सकता है। मालिक के किसी अनुचित बर्ताव पर यदि नौकर को कभी क्रोध आवे, तो उसे अपने क्रोध को दबाना चाहिये। पीछे से सब बातों पर विचार कर वह जो कुछ उचित समझे करे। जिस समय क्रोध आवे, उस समय कुछ देर के लिये चुप हो जाना चाहिये। कुछ लोगों ने क्रोध आने पर उलटी गिनती गिनने का परामर्श दिया है, जिससे क्रोधी मनुष्य का ध्यान दूसरी ओर बट जाय। ऐसा करने से थोड़ी देर में क्रोध अपने आप शान्त हो जायगा। किसी किसी महात्मा ने क्रोध को पाप का मूल बतलाया है। इसलिये इससे बचना

चाहिये। बड़ों की और भी अधिक प्रशंसा उनके शान्त स्वभाव के कारण हो सकती है। यदि किसी से कोई अपराध बन पड़े तो अपराधी को उसका अपराध समझा कर शान्त शब्दों से काम लेना चाहिये। जो ऐसा करते हैं, उनकी बात का प्रभाव सुनने वालों के मन पर चिरस्थाई होता है।

हमारा घर

संसार में अपने घर से बढ़ कर आनन्ददायक और कोई स्थान नहीं है। घर वाले अपने मनभावन वर्ताव तथा सुमधुर भाषण से उस घर को और भी रमणीय और मनोहर बना देते हैं। बच्चों की खिलखिलाहट, वृद्धों की खुरखुरी किन्तु हितकारिणी वाणी, कभी कभी छोटी मोटी बातों पर कुटुम्ब की लड़ाई और फिर प्रेम व मैत्री का हो जाना गार्हस्थ जीवन नाटक के अद्भुत दृश्य हैं। जब कभी मनुष्य अपने कुटुम्ब में मिल कर घर में बैठता है, उस समय एक अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। उन लोगों के आनन्दमय वर्त्तालाप से चित्त की चिन्ता मिट जाती है, मन प्रसन्न होता है। अपने घर के भीतर बैठ कर गृहस्थी का आनन्द भोगना, भाग्यवान् ही के भाग्य में बदा होता है। वे पुरुष धन्य हैं जो अपने कर्त्तव्यों को करते हुए घर में बैठे हुए हँसी खुशी से दिन बिताते हैं।

घर का आनन्द स्वजनों के आनन्दित रहने और प्रेम रखने ही में है। प्रेम ही गार्हस्थ जीवन का प्राण स्वरूप है। जिस घर में प्रेम का राज्य है वह घर धन्य है। घर को भला बुरा बना देना बहुत कुछ गृहिणी पर निर्भर है। कर्कशा पत्नी भाई से भाई को लड़ा देती है, घर में फूट का बीज बो देती है। भाई सी वस्तु

में कलत्र व बन्धु बान्धव मिल सकते हैं, परन्तु ऐसा देश दृष्टि नहीं आता कि, जहाँ सहोदर भ्राता मिल जाय।

"देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवः।
तन्तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥"

बाल बच्चे ही हमारे घर के प्रथम भूषण हैं। जिस घर में बालक नहीं होते, वह घर भी सूखे हुए बग़ीचे के समान है। कवियों इस विषय पर बहुत कुछ कह डाला है। माता पिता पालन पोषण में बड़ा श्रम और दुःख उठाते हैं, भोली हँसी उन सब दुःखों को दूर कर देती है। आनन्द के भी आनन्द हैं। विपत्ति और दुःख में भी को इनसे बहुत कुछ धैर्य और शान्ति होती है। शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त से कहा है, यदि शरीर बिगाड़ कर और निकट आकर पिता के इससे अधिक और सुख नहीं होता है। ... गले से लगाने से पिता को जैसा सुख नुभव और किसी तरह से नहीं होता। सुखानुभव होता है, वैसा सुखानुभव पुरुष जब परदेश से लौटता है, तब ... सिर चूमकर परमानन्द प्राप्त करता है। आनन्द दायिनी होती है। सन्तान को उसको शिक्षित और विद्वान् बनाओ। के सुधारने में बड़ी सहायक होगी।

अपने घरों को गार्हस्थ्य-जीवन देवी की उपासना की है—" Ignorance costs mor... अज्ञानता के कारण हमें जितना

के लिये नहीं होता। किसी घर में अँधेरा होने के कारण, दस बीस आदमी बिना आपस में टकराये और गिरे पड़े सुगमता से नहीं चल सकते। ठीक उस प्रकार हमारे घरों में जब तक अविद्या का अन्धकार छाया हुआ रहता है, तब तक हम आपस में लड़ते ही भिड़ते रहते हैं। इसलिये अपने घरों में विद्या का प्रकाश करना बड़ा आवश्यक है। विद्या द्वारा हम सब अपने कर्त्तव्य में प्रवृत्त रहेंगे और हमारे घरों में कलह और अशान्ति का ह्रास होगा। तब भाई भाई को जानेंगे, माता पिता सन्तानों से पूजित होंगे, दिवरानी और जिठानी मिलजुल कर घर में रहेंगी, अपनी सन्तान का अच्छी तरह पालन पोषण करके उन्हें अच्छी आदर्श सन्तान बनावेंगी। तब यह समय आवेगा कि स्त्रियाँ वास्तविक भार्य्या कहलाने योग्य होंगी। नीतिशास्त्र में कहा है कि जो गृहकार्यों में दक्ष है, वही भार्य्या है। पुरुषों की स्त्री अर्द्धांगिनी है। भार्य्या ही धर्म, अर्थ और काम, इन तीन वर्गों की जड़ है। जिसके भार्य्या है, वही गृहपत्नी है। जब भगवान् हमारे घरों में ऐसे ही दृश्य दिखावेंगे, तब ही हम कहेंगे कि हमारा भी घर है।

महानुभावता और सभ्यता

मनुष्य के लिये इन दोनों गुणों की बड़ी आवश्यकता है। जैसे दो पैरों के बल हम निश्चिन्त चले जाते हैं, उसी तरह संसार के व्यवहार में विचरने के लिये दोनों हमारे पद तुल्य हैं। इनके द्वारा संसार-यात्रा आनन्द के साथ सफल होती है। एक अंग्रेज विद्वान् का कथन है कि महानुभाव पुरुषों का संसार पर बड़ा उपकार होता है। ऐसे पुरुषों के कार्यों और व्यवहारों का सर्वसाधारण पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है। न जाने [illegible] कितने

सौजन्यशील महानुभावों के चरित्रों और उपदेशों से सुधर जाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियाँ बड़ी चञ्चल हैं। वे उसे सदैव कुमार्ग की ओर ले जाने को सन्नद्ध रहा करती हैं। इन्द्रियों को रोक कर उनसे ठीक ठीक काम लेना महानुभावता और सभ्यता का उपक्रम है। यदि सभ्य और महानुभाव बनना चाहते हो तो अपने शरीर और उसके अवयवों पर विशेष ध्यान रखो। किसी विद्वान् ने लिखा है—"हमारा शरीर एक पवित्र मन्दिर के समान है जिसमें अविनाशी पवित्र जीव, जिसका विधाता परमेश्वर है, विराज रहा है।" इस शरीर द्वारा जो कुछ भला बुरा कर्म होता है उसका यथोचित फल जीव इस लोक तथा परलोक में भोगता है। प्रत्येक मनुष्य को यह बात अपने हृदय में अङ्कित कर लेनी चाहिये इस विचार से उसकी बहुत कुछ भलाई हो सकती है। जितना हम शरीर के गौरव और उसकी क्षमता को समझेंगे और उसको पवित्र रक्खेंगे, उतने ही हमारे विचार उत्तम होंगे और हम श्रेष्ठ कार्य्य कर सकेंगे।

शास्त्रोक्त वचन है कि मनुष्य जिसका मन से ध्यान करता है, उसीको वाणी से बोलता है। जिसको वाणी से बोलता है। उसको कर्म्म से करता है और जिसको कर्म्म से करता है, उसी को प्राप्त होता है। सो बुरे विचारों और कुकर्म्मों का मन में विचार भी न करो। यदि ध्यान में किसी तरह से कोई बुरी बात आ जाय, तो उसको वाणी से न कहो। बुरे कर्म्म से सदैव डरो। कुसङ्गति से भी मनुष्य बुरे कर्म्म करने लगता है। इसके द्वारा अच्छे अच्छे जीव भी दुष्टात्मा हो जाते हैं। कुसङ्गति मनुष्य को नीचे की ओर ले जाती है। कुसङ्गति से बचकर सज्जन पुरुषों और सद्ग्रन्थों की सङ्गति करनी चाहिये। अच्छी अच्छी पुस्तकों को पढ़ने से अभीष्ट बातों की जानकारी होती है और अच्छी शिक्षा मिलती है। पुस्तकों का पढ़ना भी मनुष्य को महानुभाव और सभ्य बनाने में बहुत कुछ

सहायता देता है। यदि किसी तरह उत्तम विचार हमारे चित्त में आने लगें, तो बुरे कर्म्म हम से न बन सकेंगे।

एक महात्मा का कथन है कि, जैसे तुम्हारे विचार होंगे वैसे ही तुम हो जाओगे। यदि तुम्हारे विचार वास्तव में ठीक और सच्चे हैं, तो तुम्हारे वचन और कर्म भी, जिनका मूल कारण विचार है, सच्चे होंगे। वह मनुष्य जिसके विचार सच्चे हैं अपने जीवन के सब कामों में सच्चा होगा। ऐसा मनुष्य इस संसार में प्रशंसा-योग्य और धर्म्मात्मा है। महानुभावता के विचार रखने से मन में शान्ति और सन्तोष रहता है, उदारता का जन्म होता है, जिससे सारा संसार अपना घर सा देख पड़ता है। युवावस्था आने के समय महानुभावता बड़े बड़े भयानक पापों से बचाती है। महानुभावता जवानी के तूफ़ान से बचाने को छत्र रूप है। इससे यौवन काल में इस गुण को अवश्य अपने पास रखे। चाहे पुरुष युवा भी हो, धनाढ्य भी हो और शिक्षित भी हो, परन्तु बिना महानुभावता और सभ्यता के अमान्य है।

अब रही सभ्यता की बात। उसके विषय में यही कहना है कि यह महानुभावता के सङ्ग की सहेली है। जहाँ महानुभावता होगी वहाँ सभ्यता भी आ पहुँचेगी। सभ्यता हमारे लिये इतनी आवश्यक है कि, इससे हमें प्रतिदिन और प्रतिक्षण काम पड़ता रहता है। एक महात्मा का मत है कि, जो मनुष्य अपने समाज से अलग रहता है, वह या तो देवता है या पशु; मनुष्यों में उसकी गणना नहीं है। सभ्यता का यथार्थ अर्थ यह है कि, हमारे व्यवहार और आचरण ऐसे सुधरे हुए हों जिससे हम स्वयं लाभ उठाते हुए अपने समाज को लाभ पहुँचावें। सद्विचार, प्रेम, सहानुभूति, उदारता व सच्चरित्रता उसके आभ्यन्तरिक गुण हैं। देशभक्ति सभ्यता का फल है। जिस जाति के लोगों में देशभक्ति नहीं है,

वह कभी भी पूरी सभ्यता प्राप्त होने का दावा नहीं कर सकती। बृटेन के पुराने लोगों में न देशभक्ति थी, न सभ्यता थी। उनमें ज्यों ज्यों सभ्यता का विकाश हुआ, त्यों त्यों देशभक्ति उदय हुई।

आजकल बहुत से लोग बाहरी ठाट बाट और चमक दमक ही को सभ्यता माने हुए हैं। सभ्यता बड़ी मूल्यवान् वस्तु है और वह मनुष्य के भीतर ही रहती है, बाहर नहीं रहती। इसीलिये हमारे शास्त्रों ने भी बाहरी आडम्बर का निरादर किया है और उसको मूर्खों का ढक्कन बनाया है। सभ्यता का आचरण वही है जो सब सज्जनों की दृष्टि में अच्छा ज्ञात हो और मानव-समाज जिसको प्रिय समझे। एक अङ्गरेज़ विद्वान् ने लिखा है कि सभ्यता से उज्जड़ता दूर होती है और कला कौशल, विज्ञान, सामाजिक जीवन, राज्यशासन, विद्यानीति और धर्म्म की उन्नति होती है।

एक विद्वान् सभ्यता को तीन भाग में विभाजित करता है—(१) वाणी की सभ्यता, (२) स्वभाव की सभ्यता, (३) आचरण की सभ्यता। इन तीनों बातों पर हमें अवश्य ध्यान देना चाहिये। यदि हमारे विचार और कर्म्म अच्छे और हृदय निर्मल है तो सभ्यता अपने आप प्रफुल्लित होगी। बाह्याडम्बर सभ्यता नहीं है। अङ्गरेज़ों के कपड़े लत्तों की नक्ल को छोड़कर, हमको उनकी सच्ची सभ्यता को ग्रहण करना चाहिये। जिस सभ्यता से अङ्गरेज़ों ने इतनी उन्नति की है, वह सभ्यता हमारी आराध्य वस्तु होनी चाहिये। सभ्यता के फल-स्वरूप देश-भक्ति जिसको अङ्गरेज़ों ने अपने वक्षस्थल में धारण करने से अपनी जन्मभूमि इङ्गलैण्ड को अमरावती बना दिया और सात समुद्र पर जाकर अपनी विजयपताका (यूनियन जैक) उड़ायी) उसी को हमें प्राप्त करने के लिये अङ्गरेज़ी सभ्यता सीखनी चाहिये। जिससे हम अपनी भारतमाता को सुखी और आनन्दित कर सकें।

अभ्यास के लिये निबन्धों की सूची

नीचे लिखे विषयों पर निबन्ध लिखो—

१—ज्ञान ।
२—मातृभाषा ।
३—उदारता ।
४—निर्बलता ।
५—वीरता ।
६—आनन्द ।
७—मृत्यु ।
८—प्रतिद्वन्द्विता ।
९—अभ्यास ।
१०—भूगोल ।
११—इतिहास ।
१२—स्वसंवाद ।
१३—हिमालय पर्वत ।
१४—नदियों का उपयोग ।
१५—नहर ।
१६—जीवों के प्रति निर्दयता ।
१७—स्वदेश के प्रति कर्तव्य ।
१८—सच्ची स्वदेश-भक्ति ।
१९—पाठशाला में शिक्षा ।
२०—व्यवसाय और नौकरी ।
२१—ग्राम्य जीवन ।
२२—पुस्तकालयों से लाभ ।
२३—धार्मिक शिक्षा ।
२४—यात्रा के सुख दुःख ।
२५—वर्षा ।
२६—द्यूत-क्रीड़ा से हानियाँ ।
२७—समुद्र ।
२८—धनी और निर्धन
२९—युद्ध ।
३०—सन्तोष ।
३१—स्वार्थ-रहित परमार्थ ।
३२—अभिनय या नाटक ।
३३—स्वप्न ।
३४—त्योहार या पर्व ।
३५—अशोक का जीवनचरित्र ।
३६—उत्तम सेना का उपाय ।
३७—देश की उन्नति के उपाय ।
३८—खेल और शिक्षा ।
३९—नम्रता और सज्जनता ।
४०—महत्त्व क्यों कर पड़ता है !
४१—मदिरालयों से हानि लाभ ।
४२—निद्रा ।
४३—कृतज्ञता ।
४४—अतिथि-सत्कार ।

४५—अभिवादन ।
४६—शिष्टता ।
४७—न्याय-प्रियता ।
४८—विचारों की उदारता ।
४९—मत भेद ।
५०—दुराग्रह और कायरता ।
५१—व्यसन ।
५२—बाल्य संस्कार ।
५३—दाम्पत्य-जीवन ।
५४—उद्यमशीलता ।
५५—महानुभावता ।
५६—कृतज्ञ और कृतघ्नता ।
५७—शक्ति संचालन ।
५८—परिश्रम ।
५९—चिन्ता और स्वावलम्बन ।
६०—[illegible] ।
६१—विनय ।
६२—[illegible] ।
६३—स्वास्थ्य रक्षा ।
६४—[illegible] ।
६५—देशाटन ।
६६—बिना मन का भार ।
६७—भारतीय प्रजा का कर्तव्य ।
६८—[illegible] के कर्तव्य ।
६९—[illegible] ।
७०—वेदों से ज्ञान ।
७१—ब्रह्मचर्य ।
७२—ईश्वर महिमा ।
७३—नगर में रहने से हानि और लाभ
७४—उपन्यासों से हानि या लाभ ।
७५—समय का सदुपयोग किस प्रकार करना चाहिये ?
७६—जल वायु का स्वास्थ्य पर प्रभाव कैसे पड़ता है ?
७७—नगरों में उद्यानों की उपयोगिता ।
७८—महारानी विक्टोरिया के राज्यकाल में भारत वासियों को क्या क्या लाभ हुए
७९—हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था से हानि लाभ ?
८०—अनिवार्य शिक्षा से हानि लाभ
८१—किसी बड़े नगर में आग लगने का दृश्य
८२—किसी समुद्र या नदी पर प्रातःकाल का दृश्य ।
८३—पशु का मनुष्य जाति के प्रति उपकार और मनुष्य का उनके प्रति कर्तव्य

८४—क्या भारतवर्ष में खेती के कामों में बैलों को निकाल कर विलायती यन्त्रों को काम में लाने से विशेष लाभ हो सकता है ?

८५—कहावतों के प्रचार से हानि लाभ।

८६—भूकम्प से हानियाँ और उसकी उत्पत्ति।

८७—अकाल के कष्टों से बचाने के उपाय।

८८—स्वतन्त्रता और उसके उपयुक्तपात्र।

८९—राजा और प्रजा का सम्बन्ध।

९०—न्यायालयों की आवश्यकता।

९१—आपत्तियों से निस्तार पाने के उपाय।

९२—धन जीवों और उनके प्रभुओं का पारस्परिक सम्बन्ध।

९३—इतर जीवों की वृत्ति और परोपकार प्रवृत्ति।

९४—परिवार वालों के प्रति व्यवहार।

९५—अपने बड़ और छोटे के साथ व्यवहार।

९६—परद्रव्य सम्बन्धी न्यायपरता।

९७—परकीय ख्याति सम्बन्धी न्यायपरता।

९८—इङ्गलैण्ड का भारत के प्रति कर्त्तव्य।

९९—आभूषणों के धारण करने से लाभ और उनसे हानियाँ।

१००—शाकाहारी और मांसाहारी।

॥ इति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.